विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 09 | अंक : 36 | अप्रैल-जून, 2024
Year - 09 | Volume - 36 | April-June, 2024

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

आलोचन दृष्टि वर्ष-9 अंक-36 अप्रैल-जून, 2024 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 09	अंक - 36	अप्रैल-जून, 2024
Year - 09	**Volume - 36**	**April-June, 2024**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** चंद्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा (बिहार)।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

'आलोच्य–जगत' के अपने–अपने वैचारिक प्रकाश–स्तंभ होते हैं, और इन प्रकाश–स्तंभों की अपनी एक ख़ास क़िस्म की जगमगाहट होती है। यह जगमगाहट पूरी निष्ठा के साथ– एक आदर्श एवं मर्यादित समाज के स्थापत्य की पुष्टि करती रही है, और इसी जगमगाहट में ही रचनाकार 'स्वान्तः–सुखाय' की अनुभूति करता रहा है– **'स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा...'** जैसे तमाम सूक्तिपरक वाक्य हमारे ग्रंथों में दिखाई देते हैं। इस जगमगाहट ने हमेशा से समाज का पथ–प्रदर्शन किया है। आस्था और विश्वास की अलख जगायी है। लोगों को कभी भी अपने मर्यादित जीवन के पथ से विलग नहीं होने दिया। सभ्यता एवं संस्कृति के संस्कार बनाये एवं बचाये रखने में मदद की है। साथ ही, लोगों के अंदर गर्व, गौरव, उत्साह, त्याग, बलिदान, प्रेम, सौहार्द, एवं करुणा के भाव– जगाने एवं बचाने में ऐसे जगमगाहट का विशेष योगदान रहा है; किंतु आजाद भारत की राजनीति ने पिछले 77 वर्षों में एक ऐसी वैचारिकता का निर्माण किया है, जो पूरी तरह से पश्चिम से आयातित है, जिसमें भोगवादी या उपभोक्तावादी संस्कृति का ही वर्चस्व है। वह उसी से प्रभावित होकर ठीक उसी ओर चल पड़ी है जिस ओर पश्चिमी संस्कृति चल रही है। कई बार तो ऐसा भी लगता है कि वह इस पश्चिमी मानसिकता से होड़ लेती हुई, उसे पीछे छोड़ देने की जद्द–ओ–ज़हद में तल्लीन है। ऐसे में, पूरा भारतीय समाज प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस और चलने के लिए अभिशप्त–सा हो रहा है, या कहूँ हो गया है। हमारे बड़े–बड़े प्राध्यापक एवं चिंतन भी कहीं–न–कहीं इसी मानसिकता से प्रभावित होकर अपने मूल से भटककर– दिग्भ्रांत हो रहे हैं। उनकी इस दिग्भ्रांतता का पुरस्कार भी– राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से प्रदान किया जा रहा है, जो महामूर्ख है, वह राजनीति की पैरोकारी करके महान एवं महत्त्वपूर्ण विद्वान बन रहे हैं, बड़े–से–बड़े पदों पर आसीन हो रहे हैं और सम्मानित एवं पुरस्कारित भी हो रहे हैं।

ऐसे में ज्ञानात्मक प्रणाली का अव–क्षीर्णन होना लाजमी है, और कई बार ऐसा लगता है कि यह अकादमिक–व्यक्तित्व के जिंदा रहने पर या कहूँ अकादमी होने पर– सवाल खड़ा करती है; और इस सवाल के घेरे में हम सब कहीं–न–कहीं बुरी तरह से फंसे हुए हैं, साथ ही काफी हद तक कुंठित एवं विगलित हो रहे हैं। अस्तु, किसी–न–किसी 'एक सुदृढ़ रास्ता' की ओर बढ़ना या कोई 'ठोस निर्णय' लेना– अब बहुत आवश्यक है। खैर.... मेरे कहने का आशय यही है कि इस तरह के अपने वैचारिक आयामों को अन्तरिम समझना या मानना हमारी सबसे बड़ी भूल है। जो विचारधारा किसी का सम्मान नहीं कर सकती, किसी को सुखान्वित एवं आनन्दित नहीं कर सकती, किसी को संमार्ग नहीं दिखा सकती और किसी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित भी नहीं कर सकती– उस विचारधारा को 'प्रकाश–स्तम्भ' न कहकर 'अंघकार–स्तम्भ' कहना– अधिक श्रेयस्कर है...

उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 17 (सत्रह) शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 15 (पन्द्रह), संस्कृत–भाषा का– 1 (एक), और अंग्रेजी–भाषा के 1 (एक) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अंक में **कमलाकांत त्रिपाठी** जी का **'तुलसी का योगदान'** (भाग : 11 से लेकर 14 तक) अन्तिम खण्ड के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसके पहले के दो अंकों में– भाग : 1 से लेकर भाग 10 तक, प्रकाशित हो चुके हैं। इस लेख से हमारे पाठक निश्चित रूप से लाभांवित हुए हैं।

अंत में, इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि–परिवार' को सादर आभार। इन्हीं के सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक– अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। शेष....

30 जून, 2024।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii
- विषयानुक्रमणिका iv

1. तुलसी का योगदान (भाग : 11-14) 1-14
कमलाकांत त्रिपाठी
2. मनोभाषिक साक्ष्यों में 'रामसेतु' का अस्तित्व 15-22
दीपेन्द्र कुमार एवं प्रो. टी. कमलाबती देवी
3. राजनीति, शिक्षा, धर्म, धन, शराब एवं स्त्री का अंतर्द्वन्द्व 23-27
प्रो. शिवप्रसाद शुक्ल
4. मृत्युंजय (स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष-शहादत तथा मानवीय संवेदना के संस्पर्श की...) 28-30
प्रो. हसमुख परमार
5. सभ्यताओं के विकास-ह्रास का भाषा से है- 'अटूट संबंध' 31-34
डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य'
6. सिन्धी सूफी साहित्य का उद्‌भव और विकास 35-37
डॉ. सुशील जी. धर्माणी
7. बाल सर्जनात्मक लेखन : स्वरूप, परम्परा और मनोविज्ञान 38-43
डॉ. सुनील कुमार मानस
8. कामायनी महाकाव्य की पृष्ठभूमि रचती कविता है 'प्रलय की छाया' 44-47
डॉ. अर्चना त्रिपाठी
9. साहित्य और मनोविज्ञान का अन्तर्सम्बंध 48-51
डॉ. प्रज्ञा शर्मा
10. केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रकृति 52-55
डॉ. मीनाक्षी गुप्ता
11. भक्ति, संस्कति और दरिया साहब का सांस्कृतिक बोध 56-58
धनंजय कुमार
12. जाति-व्यवस्था की समझ और सरोकार : सैद्धांतिक अनुशीलन 59-63
डॉ. जितेन्द्र कुमार गिरि
13. हिन्दी कथा साहित्य में मानवाधिकार की संकल्पना (मानव-मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में) 64-66
डॉ. राहुल
14. अज्ञेय के यात्रा वृत्तों में नगरीय जीवन 67-73
प्रभात मिश्र
15. साक्षात्कार (नवगीत का आगमन गीत रचना की अनिवार्य परिणति है- डॉ. शान्ति...) 74-78
मोहन कुमार
16. अद्वैतवेदान्ते मोक्षसाधनविमर्शः 79-81
डॉ. शशि भूषण भट्टः
17. **A Study on The Higher Secondary Students' Achievement in Their...** 82-92
Suresh B & Dr. G Vanmathi

ஓ★ஒ

(क्रमशः प्रकाशन का तीसरा और अन्तिम भाग)

तुलसी का योगदान

कमलाकांत त्रिपाठी*

भाग – ग्यारह

रावण का व्यक्तित्व एवं चरित्र

राक्षस कोई नस्ल नहीं थी। रावण पुलस्त्य ऋषि (सप्तर्षियों में एक) का पौत्र और एक अन्य ऋषि विश्रवा का पुत्र था। उसकी माँ कैकशी असुर समुदाय (नस्ल नहीं) से थी, कैकशी के पिता सुमाली असुर समुदाय के राजा थे। एक विवरण के अनुसार कैकशी ने ऋषि विश्रवा से संतानप्राप्ति की याचना की थी जिसे विश्रवा ने स्वीकार कर लिया था।

सुर और असुर दोनों ऋषि कश्यप और उनकी दो पत्नियों दिति और अदिति की संतानें थे। दिति और अदिति सहोदरा बहने थीं और दक्ष की (एक ही पत्नी से उत्पन्न) पुत्रियाँ थीं। इसलिए असुरों या राक्षसों की कोई अलग नस्ल नहीं हो सकती थी। सुर समुदाय के कुबेर रावण के सौतेले बड़े भाई थे। उनके पिता भी ऋषि विश्रवा थे जो रावण के पिता थे। किंतु माँ थीं देववर्णिणी (?)। कुबेर ने लंका पर अपना राज्य स्थापित किया था। रावण ने कुबेर से लंका का राज्य जीतकर उनका पुष्पक विमान भी छीन लिया था। देवगण रावण की उग्रता से त्रस्त थे। इसलिए रामावतार। रावण में दुर्गुण थे तो सद्गुण भी थे। उसने रावण–संहिता नाम से एक ज्योतिष ग्रन्थ लिखा था। दक्षिण में प्रचलित सिद्ध या सिद्धा (?) औषधि पद्धति पर लिखे उसके एक ग्रंथ अर्कप्रकाशम् का उल्लेख मिलता है।

आज भी अपनी विशिष्ट, प्रवहमान भाषा और अद्भुत नाद–सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध, अतिशय लोकप्रिय शिवताण्डव स्तोत्र रावण–प्रणीत माना जाता है। मिथकों के अनुसार रावण शिव का असाधारण भक्त था। उसने गोदावरी तट पर शिव की घोर तपस्या की थी। दस बार अपना शिर काटकर शिव को अर्पित कर दिया था और दसों बार नये शिर उग आये थे। यहाँ दश शिर प्रतीकात्मक हो सकते हैंकृकाम, क्रोध, मोह, लोभ, मद (उन्माद), मात्सर्य (ईर्ष्या), मन, प्रज्ञा, चित् (संकल्प) और अहंकार। सभी में कम–ज़्यादा होते हैं। रावण से कहा गया था, प्रज्ञा के अतिरिक्त नौ गुणों को प्रज्ञा के अधीन रखो। किंतु वह असफल रहा। फिर भी लंका में उसका शासन चाक चौबंद था। उसके द्वारा अपनी प्रजा पर किसी तरह का अत्याचार करने का कोई साक्ष्य नहीं मिलता। दूत की भूमिका में उसके दरबार में पहुँचे हनुमान और अंगद के साथ उसका व्यवहार नीति–सम्मत था। भाई विभीषण के विद्रोह करने और राम से मिल जाने के बावजूद उसने उसे कोई हानि नहीं पहुँचाई। और सबसे बड़ी बात, उसने परम सुंदरी सीता के साथ कभी ज़ोर–जबर्दस्ती नहीं की, लगातार विवाह के लिए ही आग्रह करता रहा।

रामावतार लोक और देव–कल्याण तथा अशुभ के विनाश के लिये हुआ था। रामायण काल में दक्षिण भारत जंगलों से अँटा पड़ा था। वर्तमान नासिक के निकट गोदावरी तट पर स्थित पंचवटी तक बल्कि उसके और उत्तर चित्रकूट तक विकट जंगल, पहाड़ियाँ, नदी–नाले और दुर्गम घाटियाँ थीं। इनमें रावण के सहयोगियों या उसके अधीनस्थों का वर्चस्व था। जंगलों के जनस्थानों में ऋषि–मुनि कंद–मूल–फल खाकर तपस्या करते थे किंतु रावण के अनुचर उसमें विघ्न डालते थे, तपस्विओं की हत्या तक कर देते थे।

वनगमन के दौरान राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट में ठहरे और एक छोटा–सा आश्रम बनाकर वहीं रहने लगे थे। ननिहाल से लौटकर भरत माँ कैकेयी से राम के वनवास और पिता की मृत्यु का कारण जानने के बाद स्तब्ध रह जाते हैं। वसिष्ठ से सलाह करने के बाद वे राम से वापस लौटकर राज्य सँभालने

***प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 40/891, कुवेम्पू नगर, हिण्डालगा, बेलगावी, कर्नाटक–591108।**

का आग्रह करने चित्रकूट चल पड़ते हैं। राम के वियोग और वनवास से संतप्त अयोध्यावासी भी उनके साथ हो लेते हैं। कोसल राज्य की सेना भी उनके साथ चल पड़ती है। गुरु वसिष्ठ और तीनों माताएँ भी चित्रकूट–यात्रा पर निकल पडती हैं। पूरा अमला चित्रकूट पहुँचकर वहीं पड़ाव डाल देता है। जनकपुर से सपत्नीक राजा जनक भी चित्रकूट पधार जाते हैं।

भरत स्वयं राम के बदले वन जाने को तैयार हैं। काफ़ी दिनों से पड़ाव डाले, अनेक असुविधाएँ झेलते, सभी लोग चित्रकूट में अनिश्चय की स्थिति में रह रहे हैं। राम पर जबर्दस्त दबाव है। यहाँ एक उल्लेखनीय बात का ज़िक्र आवश्यक है। जैसे ही देवताओं को लगता था कि राम राक्षसों के संहार के लिये पूर्वनिर्धारित पटकथा के अनुरूप न चलकर, किसी बिंदु से लौट पड़ेंगे या इतर दिशा में मुड़ जायेंगे, उनमें खलबली मच जाती थी। राम से वार्ता करने, भरत, जनक और पूरे समाज के साथ गुरु वसिष्ठ राम के आश्रम आते हैं और बस देवतागण अतिशय उद्विग्न हो उठते हैं। उन्हें लगता है, राम अब अयोध्या लौट सकते हैं। सबको राम के प्रेम में आप्लावित देखकर देवगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। सोच में पड़े देवराज इंद्र इस स्थिति से निबटने के लिये देवताओं को कुछ प्रपंच रचने का आदेश देते हैं–

रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाज।। (अयोध्याकाण्ड, 214)

(देवराज इंद्र चिंतातुर होकर देवताओं से कहने लगेकृराम (भरत, वसिष्ठ, जनक, अयोध्यावासियों आदि के) स्नेह और संकोच के बंधन से बँधे हुए हैं। तुम लोग मिलकर कुछ प्रपंच रचो, नहीं तो काम बिगड़ जाएगा (राम अयोध्या लौट जाएंगे और सीताहरण, रावण–वध, राक्षस विनाश वगैरह नहीं हो पाएगा)।)

अंततः देवताओं की इच्छा के अनुरूप राम का निर्णय ही सर्वोपरि और सभी के लिए स्वीकार्य सिद्ध होता है–

दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देश काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन। (अयोध्याकाण्ड, 314)

(भरत के विनयार्त एवं निष्कपट वचनों को सुनकर, दीनबंधु, व्यवहार–प्रवीण श्रीराम देश, काल एवं अवसर के अनुरूप बोले)

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि, नृपहि घर बन की।
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू।।
मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु, सुजसु धरम परमारथु।
पितु आयसु पालिहिं दोउ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई। (अयोध्याकाण्ड, 314ः 1–2)

(भाई (भरत), तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की––सबकी चिंता गुरु वसिष्ठ और राजा जनक को है। जब तक हमारे सिर पर गुरु वसिष्ठ, मुनि विश्वामित्र और मिथिलापति जनक का साया है, मुझे और तुम्हें स्वप्न में भी कोई कष्ट नहीं हो सकता। मेरा और तुम्हारा परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ सब इसी में है कि हम दोनों (स्व.) पिता जी की आज्ञा का पालन करें। (स्व.) राजा के व्रत की रक्षा में ही लोकमत और वेदमत दोनों की भलाई है।)

भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू।
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के। (अयोध्याकाण्ड, 315ः 1–2)

(इधर भरत का विनत प्रेम, उधर गुरुजनों, मंत्रियों एवं प्रजागण का आग्रह। राम संकोच और स्नेह से विवश हो गये। अंततः उन्होंने अपना खड़ाऊँ उतारा और कृपापूर्वक भरत के हवाले कर दिया। और भरत ने उसे आदरपूर्वक सिर से लगाकर स्वीकार भी कर लिया। करुणानिधान राम के दोनों खड़ाऊँ जैसे प्रजा के

प्राणों की रक्षा के लिए दो प्रहरी हों, भरत के प्रेमरूपी रत्न को सुरक्षित रखने के लिये संपुट हों, प्रजाजन के जीवन–यत्न के लिए राम–नाम के दो अक्षर हों।)

राम के इस व्यावहारिक निर्णय से बीच का रास्ता निकल आया। भरत शासन करेंगे, जिससे राजा दशरथ के व्रत और उनकी आज्ञा का पालन होगा। किंतु वे राम के प्रतिनिधि के तौर पर शासन करेंगे, जिससे भरत, गुरु वसिष्ठ और अयोध्या की प्रजा की भावना का सम्मान होगा (रघुवंशियों का राज्य निरंकुश राजतंत्र नहीं था)। और सबसे बड़ी बात रामावतार की लक्ष्य–पूर्ति का मार्ग खंडित नहीं होगा, जिसके लिए इंद्र–सहित देवगण चिंतातुर थे।

चित्रकूट में कुछ दिन और निवास करने के बाद (जिस दौरान इंद्र का मूर्ख पुत्र जयंत राम के बल की परीक्षा लेने हेतु कौवा का रूप धारणकर सीता जी के चरणों में चोंच मारकर उड़ गया और राम द्वारा चलाये गये सींक के बाण के पीछा करने पर, कोई आश्रय न पाकर, नारद की सलाह पर, राम के पास लौटकर, उनके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया; राम ने उसका वध करने के बजाय एक आँख से वंचित कर उसे छोड दिया), राम ने चित्रकूट छोड़ने का निर्णय लिया। इस आधार पर कि उन्हें आसपास के लोग जान गये थे जिससे उस जनस्थान में भीड़ जमा होने लगी थी। वस्तुतः रामावतार की पटकथा के अनुरूप राम को चित्रकूट छोड़कर दक्षिण की ओर आगे बढ़ना ही था।

राम जब दक्षिण की ओर आगे बढ़ेथी, ऋषियों–मुनियों का एक बड़ा समूह ही उनके साथ चल पड़ा। मुनि शरभंग की तपस्थली के आगे राम को हड्डियों का एक विशाल ढेर दिखाई पड़ा। मुनियों से पूछने पर ज्ञात हुआ, ये उन तपस्वियों की हड्डियाँ हैं जिन्हें राक्षसों (असुरों) ने खा डाला था (नष्ट कर दिया था?)। और तब राम ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से शून्य कर दूंगा। फिर उन्होंने सभी मुनियों के आश्रम जाकर उन्हें आश्वस्त किया––

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल संग लागे।
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।
जानत हूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए।
निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन। (अरण्यकाण्ड, 8:3–4 और दोहा 9)

दक्षिण दिशा में आगे बढ़कर राम ने अगस्त्य ऋषि के आश्रम में उनसे मुलाक़ात की और उनकी सलाह पर (अपने वृहत्तर लक्ष्य की सिद्धि के लिये ?) वहाँ से दक्षिण–पश्चिम की ओर चलते हुए गोदावरी के उत्तरी तट पर पहुँचे। पंचवटी (वर्तमान नासिक के पास) में पर्णकुटी छाकर वहीं रहने लगे। श्रीराम के वहाँ निवास करने से वहाँ के सारे मुनिगण भयमुक्त और सुखी हो गये। तभी सीता–हरण और राक्षसों के लिये विनाशकारी लंका–युद्ध के बीजारोपण सदृश शूर्पणखा–प्रसंग घटित होता है जो रामचरितमानस के घटनाक्रम में एक निर्णायक बिंदु साबित होता है।

एक दिन नागिन के समान भयानक और स्वभाव से दुष्ट रावण–भगिनी शूर्पणखा पंचवटी पहुँच गई और वहाँ राम–लक्ष्मण को देखकर काम से विकल हो गई। सुदर्शना स्त्री का रूप धारणकर राम के पास गई और मुस्कराकर बोलीकृन तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान कोई कोई स्त्री। विधाता ने बहुत सोच–समझकर हमारे मिलन का यह संयोग उपस्थित किया है। तीनों लोकों में मेरे मन का पुरुष नहीं मिला, इसलिए मैं अभी तक कुमारी हूँ। अब तुम्हें देखकर चित्त में कुछ ठहराव आया है। राम ने सीता जी की ओर दृष्टि डालकर शूर्पणखा से संकेत में अपनी वैवाहिक स्थिति स्पष्ट कर दी किंतु (कौतुकवश) यह भी कह दिया कि मेरा छोटा भाई लक्ष्मण अभी अविवाहित है। शूर्पणखा तुरंत लक्ष्मण के पास जा पहुँची। लक्ष्मण ने राम की ओर देखा और कोमल स्वर में शूर्पणखा से कहाकृमैं तो उनका दास हूँ, वे कोसलपुर के राजा हैं, उनके लिए कुछ भी अनुचित नहीं। दोनों भ्राता उसे एक–दूसरे के पास घुमाते रहे। अंत में क्रुद्ध होकर शूर्पणखा ने राम के सम्मुख अपना भयंकर रूप प्रकट कर दिया। उसे देखकर सीताजी भयभीत हो गईं। राम

ने लक्ष्मण को इशारा किया। लक्ष्मण ने उसे नाक और कान से रहित कर दिया। विलाप करती हुई वह रावण के सैन्य–सामंत के रूप में उस इलाक़े में तैनात उसके सौतेले भाइयों खर और दूषण के पास जाकर विलाप करने लगी। परिणामनस्वरूप खर–दूषण की राक्षस सेना का राम पर आक्रमण और राम–लक्ष्मण द्वारा खर–दूषण सहित राक्षस सेना का संहार। अब शूर्पणखा ने लंका लौटकर रावण को बुरा–भला कहते हुये उसे राम के विरुद्ध भड़काया।

आगे रामचरितमानस का एक अहम बिंदु है जो अरण्यकाण्ड की निम्नलिखित पाँच चौपाइयों में व्यक्त होता है। इनकी ओर लोगों का ध्यान कम जाता हैकृ

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं।
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।
तो मैं जाइ बैर हठि करऊँ प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।
होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा। (अरण्यकाण्ड, 22:1–3)

(शूर्पणखा की बातें सुनकर रावण मन में विचार करने लगा–) देव, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई भी नहीं जो मेरे अनुचरों तक का सामना कर सके। खर और दूषण (रावण के सौतेले भाई) तो मेरे ही समान बलवान थे। उन्हें भगवान् के सिवा और कौन मार सकता है! यदि देवों को आनंदित करनेवाले और (पापों से) पृथ्वी का भार हरनेवाले भगवान् ने अवतार ले लिया है, तो मैं जाकर हठात् उनसे शत्रुता करता हूँ और प्रभु के बाणों के प्रहार से प्राण छोड़कर भवसागर पार कर लेता हूँ। मेरे इस तामस शरीर से भगवद्भजन तो होने से रहा। अतः मन, कर्म और वचन से अब मैं इसी मार्ग का अनुसरण करता हूँ।)

तो रावण को भी इसका एहसास हो गया कि राम परब्रह्म परमात्मा के सगुण अवतार हैं और अधर्म के विनाश के लिए लीला कर रहे हैं। इसके बाद उसके सारे उपक्रम, सारे आग्रह, सारे हठ राम के बाणों से मारे जाकर भवसागर से मुक्ति प्राप्त करने की ओर उन्मुख थे। राम की लीला के भीतर रावण की लीला! इसके उपरांत ही रावण मारीच से सीताहरण में सहयोग माँगने जाता है। सीता–हरण होता है और उसके परिणामस्वरूप लंका का युद्ध जिसमें रावण अपने पुत्रों एवं भ्राता कुम्भकर्ण के साथ मारा जाता है। तुलसी के अनुसार अपनी योजना के अनुरूप राम के हाथों मारे जाने के लिए रावण न केवल स्वयं की बल्कि (विभीषण को छोड़कर) अपने बंधु–बांधवों की भी बलि दे देता है। तुलसी का रामचरितमानस पुराणों की आख्यान–शैली से मुक्त नहीं हो सकता था। 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्' की अपरिहार्य परीणति।

तुलसी का योगदान–बारह

भारतीय दर्शन परंपरा में तुलसी का योगदान

एक– रामचरितमानस में निर्गुण–सगुण में द्वंद्व नहीं– अभेद है।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई। (बालकाण्ड,115:1)

(निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं– मुनिगण, पुराण, विद्वान और वेद इसी का गायन करते हैं। जो निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और अनादि (परम चेतन सत्ता) है, वही भक्तों के प्रेमवश (मनुष्य की संकल्प सत्ता के हासिल में) सगुण हो जाता है।)

दो– राम अद्वैत वेदांत के ब्रह्म हैं

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा अवलेसा।
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना (बा.का.,115–3)

(राम सत्, चित् और आनंद हैं। अद्वैत वेदांत में आत्मज्ञान की अवस्था सच्चिदानंद की है। यह ब्रह्म या आत्मा का गुण नहीं, उसका स्वरूप है। इसमें सत्, चित् और आनंद पूर्वापर नहीं, युगपत् रूप से हैं। जो सत् है, वही चित् है, वही आनंद है। {(1) वह सत् है– सृष्टि का आदि कारण सत्य यानी शाश्वत है; (2) वह

चित् है, यानी बुद्धिगम्य है (वैज्ञानिकता का सूचक); और (3) वह आनंद है– ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के एकत्व–बोध से प्राप्त अखंड आनंद।}

राम सहज और नित्य प्रकाश रूप सूर्य हैं, इसलिए वहाँ मोहरात्रि का अस्तित्व नहीं। इसीलिए मोहरात्रि के नष्ट होने पर अगले दिन के विज्ञान का प्रातःकाल भी नहीं है।)

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान। (बालकाण्ड, 117:3–4)

तीन– राम वही हैं जिन्हें लक्ष्यकर वेद नेति नेति कहते हैं–

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह। (अयोध्या काण्ड, सोरठा 126)

(हे राम! आपका स्वरूप वाणी के लिए अगोचर है। बुद्धि से परे है। अव्यक्त (या नित्य (अविगत के दोनों अर्थ संभव हैं) है। अनिर्वचनीय है। अपार है। वेद उसे नेति नेति (ऐसा नहीं, ऐसा नहीं) कहकर इंगित करते हैं।)

चार– राम विष्णु के नहीं परब्रह्म के अवतार हैं, वे ब्रह्मा, विष्णु और शिव को नचानेवाले हैं।

जगु पेखन तुम्ह देखनहारे। बिधि हरि संभु नचावनहारे।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा। (अयोध्या काण्ड 126–1)

((हे राम!) जगत् दृश्य है, आप द्रष्टा हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव को नचानेवाले हैं। वे भी आपका मर्म नहीं जानते तो अन्य कौन तुम्हें जाननेवाला है!)

यह विमर्श का विषय हो सकता है कि भक्ति और ज्ञान के सामंजस्य में क्या तुलसी रामानुज के विशिष्टाद्वैत के बजाय शंकर के अद्वैत और भक्तिमार्ग में सामंजस्य स्थापित कर दर्शन के धरातल पर सर्वथा मौलिक योगदान करते हैं।

पाँच– उत्तरकाण्ड में गरुड–काकभुशुंडि संवादः ब्रह्मांडिकी (ब्वेउवसवहल) और सापेक्षता सिद्धांत का रूपक

जैसा कि पूर्व भागों में आ चुका है, रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में वाल्मीकीय रामायण के (प्रक्षिप्त) उत्तरकाण्ड से कोई प्रसंग नहीं लिया गया है। राम के अयोध्या आगमन, भरत–मिलाप, उनके राज्याभिषेक और विभीषण तथा वानरों की विदाई के प्रसंग वाल्मीकि के युद्धकाण्ड से अवश्य लिये गये हैं, जिनकी रामायण के प्रक्षिप्त उत्तरकाण्ड में विस्तार और भिन्न पाठ के साथ पुनरावृत्ति हुई है। यह तुलसी के 'यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि' के सर्वथा अनुकूल है। सीता–निर्वासन और शम्बूक–वध का बहिष्कार वाल्मीकीय रामायण के किसी प्रसंग का बहिष्कार नहीं, उसके उत्तरकाण्ड की प्रक्षिप्त प्रकृति की पहचान है।

मानस के उत्तरकाण्ड का लगभग तीन चौथाई काकभुशुंडि–गरुड संवाद को समर्पित है जो गरुड के मोह से उत्प्रेरित होता है। इस संवाद के माध्यम से ही काकभुशुंडि के पूर्व जन्मों की कथा, ज्ञान–भक्ति निरूपण, कलियुग–वर्णन इत्यादि पर तुलसी का मंतव्य व्यक्त हुआ है।

आ चुका है कि लंका में युद्ध के दौरान श्रीराम का रावण से पहले मेघनाथ (इंद्रजीत) से भी युद्ध हुआ था। मेघनाथ ने नागपाश शक्ति का प्रयोग कर श्रीराम को बाँध लिया था और (तुलसी के अनुसार) लीलावश, नागपाश की मर्यादा के सम्मान में राम बँधकर विवश हो गये थे। उस समय गरुड ने नागपाश के सभी नागों को आहार बनाकर श्रीराम को मुक्त किया था। इसके बाद गरुड मोहग्रस्त हो गये। उन्हें संदेह हुआ कि श्रीराम सच्चिदानंद ब्रह्म हैं या साधारण व्यक्ति जिसे तुच्छ नागपाश ने बाँध लिया? मोह में अभिमान निहित ही होता है। समाधान के लिए वे नारद जी के पास गये, नारद ने उन्हें ब्रह्मा जी के पास भेज दिया।

ब्रह्मा ने उन्हें शंकर जी के पास भेजा। उस समय शंकर जी कुबेर के यहाँ जा रहे थे, जल्दी में थे तो उन्होंने सत्संग की महिमा बताकर गरुड को नील पर्वत पर निरंतर राम कथा कहनेवाले काकभुशुंडि के पास भेज दिया। वहाँ पहुँचते ही गरूड का मोह दूर हो गया। काकभुशुंडि ने कहा, श्रीराम अपने भक्तों में कभी अभिमान नहीं रहने देते। इसी संदर्भ में उन्होने स्वयं के मोहग्रस्त होने और उससे मुक्ति की कथा सुनाई।

काकभुसुंडि– जब–जब श्री राम अपने भक्तों के लिये लीला करने हेतु मनुष्य–शरीर धारण करते हैं, मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ, एक छोटे–से कौवे का रूप धारणकर उनकी बाललीला देखता हूँ, आनंदित होता हूँ और पाँच वर्ष वहीं रह जाता हूँ। मेरे निकट जाने पर प्रभु हँसते हैं और उड़ जाने पर रोते हैं। किंतु जब मै उनका चरण स्पर्श करने के लिये आगे बढ़ता हूँ, वे मेरी ओर मुड़–मुड़कर देखते हुए भाग जाते हैं। एक बार मुझे शंका हुई कि साधारण बच्चों–जैसी हरकत करनेवाले ये सचमुच सच्चिदानंद ब्रह्म हैं! शंका होते ही मुझ पर माया छा गई। मुझे भ्रम से चकित देखकर बालरूप श्रीराम हँस पड़े और घुटनों व हाथों के बल चलते हुए मुझे पकड़ने दौड़े। मैं उड़ चला। आकाश में उड़ता रहा किंतु उनकी भुजा मुझसे बस दो अंगुल पीछे लगी रही। जहाँ तक मेरी गति थी, मैं उड़ा पर उनकी भुजा लगातार पीछे लगी देखकर मैं व्याकुल हो गया। भयभीत होकर मैंने आँखें बंद कर लीं। फिर आँखें खोलीं तो अपने को अवधपुरी में पाया। श्रीराम मुझे देखते हुए मुस्करा रहे थे। जैसे ही वे हँसे, मैं उनके मुँह में घुस गया।

मैंने उनके पेट में अनेक ब्रह्मांडों के समूह देखे। ब्रह्मांडों मे विचित्र–विचित्र लोक देखे। अद्‌भुत सृष्टि देखी। करोड़ों ब्रह्मा, करोड़ों शिव, अनगिनत तारागण, अनगिनत सूर्य, चंद्रमा, लोकपाल, यम, विशाल पर्वत और पृथ्वी देखी। नाना प्रकार के देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, किन्नर और हर तरह के जड़ और चेतन जीव देखे। मैं एक–एक ब्रह्मांड में सौ–सौ वर्ष रहा और अनेक ब्रह्मांडों को देखता फिरा। प्रत्येक लोक में भिन्न–भिन्न ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गंधर्व, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प। प्रत्येक ब्रह्मांड में मैंने अपना रूप देखा, हर लोक में अवधपुरी देखी, भिन्न–भिन्न सरयू देखी। दशरथ और कौशल्या, भरत आदि भाइयों को देखा। बस राम को दूसरा नहीं देखा। सर्वत्र वही बालरूप राम, वही शोभा, वही कृपालुता। मेरे अनेक ब्रह्मांडों में भटकते हुए सौ कल्प बीत गये। मुझे व्याकुल देखकर कृपालु श्रीराम हँस दिए और उनके हँसते ही मैं बाहर आ गया। बाहर आकर मैंने पाया कि यह सब बस दो घड़ी में सम्पन्न हो गया। मुझे प्रेमविह्‌वल देखकर प्रभु ने मेरे सिर पर अपना कर–कमल रख दिया। मेरा समस्त दुःख दूर हो गया। उन्होंने वर माँगने को कहा तो मैंने उनसे निष्काम भक्ति माँग ली जिसका गायन श्रुति और पुराण करते हैं।

इस आख्यान में एक दोहा और एक चौपाई बहुत महत्वपूर्ण हैं–

भिन्न–भिन्न मैं दीख सबु, अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन। (उत्तरकाण्ड 81–क)

(हे हरि के वाहन गरुड जी! मैंने सब कुछ भिन्न भिन्न और चित्र–विचित्र देखा (दृश्यजगत्–Becoming)। अनगिनत लोकों में घूमता रहा किंतु श्रीराम को दूसरा नहीं देखा (अस्तित्व–Being)।)

उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा। (81–4)

(यह सब मैंने दो घड़ी में देख लिया। मन में अतिशय मोह होने से मैं भ्रमित हो गया। {राम के पेट में समा जाने के बाद वहाँ सौ कल्प (कल्प=ब्रह्मा का एक दिन=1000 चतुर्युग) घूमता रहा किंतु बाहर आने पर पाया कि यह सब दो घड़ी में सम्पन्न हो गया}।)

यह पूरी ब्रह्मांडिकी (Cosmology) का रूपक है। आइंस्टाइन के सापेक्षता सिद्धांत का भी। जब दो द्रष्टा सापेक्ष गति में हैं तो एक के लिए एक ही समय साथ–साथ घटनेवाली दो घटनाएं दूसरे लिए एक ही समय साथ साथ नहीं घटेंगी।

क्वांटम भौतिकी के अनुरूप समस्त ब्रह्मांड के जड़, चेतन एवं ख़ाली आकाश में भरे परमाणुओं के भीतर सतत गतिशील और परस्पर गुंथे इलेक्ट्रोन के ऊर्जा क्षेत्र का भी रूपक सिद्ध हो सकता है।

यह गीता के 11वें अध्याय के विश्वरूपदर्शन के समांतर है। किंतु एक अंतर है। गीता में सब कुछ कृष्ण का ही विस्तार है जिससे अर्जुन भयभीत हो जाता है, यहाँ राम की सत्ता स्वतंत्र है और वही एकमात्र सत्ता है जो एकरूप बनी रहती है। अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का अंतर। अद्वैतवाद में चेतन ब्रह्म एक है, और हर मनुष्य की चेतना में उससे एकाकार होने की संभावना निहित है। वही सृष्टि का आदि कारण है जो सृष्टि के नाना नश्वर रूपों में व्याप्त है किंतु मायाजनित विवर्त के कारण एकत्व का बोध नहीं होता। ज्ञान से एकत्व बोध होने पर नानात्व नष्ट हो जाता है। विशिष्टाद्वैत में चित् और अचित् दोनों ब्रह्म के अंश हैं और प्रकृति का नानात्व अचित् अंश की अभिव्यक्ति है, उसका विशेषण।

अस्तु, यह सार्थक विमर्श का विषय हो सकता है कि तुलसी की भक्ति विशिष्टाद्वैत की भक्ति है, अथवा अद्वैत की प्राप्ति के लिए उन्होंने भक्तिमार्ग को सक्षम साधन बनाकर एक मौलिक दार्शनिक अवधारणा को जन्म दिया।

तेरह

तुलसी का काव्य–सौष्ठव

एक– रामचरितमानस का लोक–रूपकः धान (चावल) रूपी सत्कर्म का फलित

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू।
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी।
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई।।
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई।
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना (बालकाण्ड, 35:2–5, 36:1–8, 37:1,2)

(सन्मति रूपी भूतल पर हृदय रूपी गहराई है। वेद–पुराण रूपी समूद्र से साधुपुरुष रूपी बादल बनते हैं और भूतल के ऊपर आकर राम के सुयश रूपी शुद्ध जल की वर्षा करते हैं, जल जो मधुर है, मनोहर है और है मंगलकारी। इस (रामचरितमानस) में ब्रह्म की (राम के रूप में) जिस सगुण लीला का वर्णन है वह (भूतल पर पड़ने से) मटमैले हुए पानी को स्वच्छ करती है। इसमें निहित जो अवर्णनीय प्रेमपूर्ण भक्ति है वही जल में शीतलता और मधुरता लाती है। वही जल सत्कर्म रूपी धान की फ़सल के लिए हितकारी है। वही सत्कर्म रूपी धान राम के भक्तजनों का जीवन है (सत्कर्म और धान दोनों जनजीवन के लिए अनिवार्य हैं)। वही (राम का सुयश रूपी शुद्ध, स्वच्छ, मधुर, मनोहर, मंगलकारी) जल सिमटकर शोभन कानों के मार्ग से पृथ्वी रूपी बुद्धि के भीतर प्रविष्ट हुआ और सुंदर चित्त (खेत) में भरकर समतल और थिर हो गया। इससे सत्कर्म रूपी धान (चावल) पुराना होकर सुखद (सुस्वादु), शीतल (सुपाच्य) रुचिकर और (देखने में) सुंदर हो गया।)

{रामचरितमानस का लोकजीवन वस्तुतः कृषि जीवन है। कृषि कर्म से जुड़े लोग ही समझ सकते हैं कि सत्कर्मों की तरह ही चावल पुराना होनेपर किस तरह सुस्वादु, सुपाच्य, रुचिकर और देखने में भी सुंदर हो जाता है (घर में कुटे चावल पर जो भूसी की महीन भीतरी परत लगी रह जाती है, उसे (अवध में) 'पई' नाम से अभिहित लघुकीट चाटकर पॉलिश जैसी कर देते हैं।)}

दो– रामचरितमानस में लोकमत और वेदमत के दो तटों वाली सरिता का रूपक

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही।
भयउँ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू।
चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला। (बालकाण्ड, 38:5–6)

(रामचरितमानस रूपी सरोवर (के जल) को चित्त से चखकर और उसमें स्नान कर कवि की बुद्धि निर्मल हो गई। उसका हृदय आनंद और उत्साह से भर गया और उसमें प्रेम एवं सृजनात्मक सुख का प्रवाह

उमड़ पड़ा। उससे वह कवितारूपी नदी बह निकली जिसमें राम का निर्मल यश–रूपी जल भरा है। उस नदी का नाम है सरयू। वह जन–कल्याण का मूलाधार है। इसके दो सुंदर तट हैं– लोकमत और वेदमत।)

तीन– तुलसी काव्य में वात्सल्य रस की छटा

काव्यशास्त्र के आचार्य विश्वनाथ (साहित्यदर्पण) वात्सल्य को एक स्वतंत्र रस मानते हैं जिसका स्थायी भाव है स्नेह। कृष्ण की बाललीला के चित्रण में वात्सल्य रस की उत्कृष्ट निष्पत्ति सूरदास को इस क्षेत्र में अग्रणी बनाती है। किंतु तुलसी के वात्सल्य रस का अलग ही रंग है।

बर दंत की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की।
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की। (कवितावली, बालकाण्ड, 5)

(बालक राम) के ऊपर और नीचे के अधरपुटों के खुलने पर श्वेत कमलिनी की कलियों जैसी उज्ज्वल दंतपक्ति और गले में पड़ी अमूल्य मोतियों की माला ऐसे शोभायमान होती हैं जैसे श्याम रंग के बादलों के बीच विद्युत् चमक उठी हो। मुखमंडल पर लटकती घुँघराली लटों और लालिमा–युक्त गालों पर झूलते कुंडल की शोभा तथा उनकी कर्णमधुर अमूल्य वाणी पर मैं प्राण न्योछावर करता हूँ।)

चार– तुलसी में मर्यादित शृंगार का सूक्ष्म सौंदर्य

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सियमुख ससि भए नयन चकोरा।
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल। (रामचरितमानस, बालकाण्ड, 229: 1–4)

(जनकपुर। पुष्पवाटिका में सीता और राम का प्रथम मिलन। अनुप्रास की अद्‌भुत ध्वनि से शुरू होती है चौपाई। (सीता के हाथों के) कंगन, (कमर की) करधनी, और (पैरों के) नूपुर की मिली–जुली ध्वनि सुनकर राम हृदय में विचार करने के बाद लक्ष्मण से कहते हैंकृमानो कामदेव विश्वविजय के संकल्प से दुंदुभी बजा रहे हों। ऐसा कहकर राम ने पुनः सीता की ओर देखा। फिर तो सीता का मुख चंद्रमा बन गया और राम की दृष्टि उसे निहारने वाली चकोर। सीता को देखते हुए राम के सुंदर नेत्र स्थिर हो गये। मानो निमि (जनक के पूर्वज, जिनका निवास पलकों में माना जाता है) ने सकुचाकर राम की पलकों को त्याग दिया जिससे झपने–खुलने का उनका गुणधर्म जाता रहा।)

दूलह श्री रघुनाथु बने दुलहीं सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।।
रामको रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही, पल टारत नाहीं। (कवितावली, बालकाण्ड:17)

(जनकपुर, सुंदर राजमहल में बना विवाहमंडप। राम बने हैं दूल्हा और दुल्हन हैं जनकदुलारी सीता। सुंदरी स्त्रियाँ मिलकर विवाह के मंगलगीत गा रही हैं। युवा ब्राह्मणों की एक टोली समवेत स्वर में वेदपाठ कर रही है। और सीता? वे अपने कंगन के नग में पड़ती राम की परछाईं में उनका रूप निहार रही हैं। इसमें इस क़दर तल्लीन हो गई हैं कि शेष सब कुछ भूल गया है। न उनका हाथ हटता है, न पलकें झपकती हैं।)

पाँच– लोकमन के अंतरंग चित्र

अयोध्याकांड। गंगा पार कर, संगम पर स्नान करने और भरद्वाज आश्रम में ठहरने के बाद राम, लक्ष्मण और सीता निषादराज गुह के साथ यमुना पार करते हैं और अनुनय करके निषादराज को वापस भेज देते हैं। अब वे चित्रकूट की ओर बढ़ रहे हैं। रास्ते के एक गाँव में ग्राम–वधुयें सहज जिज्ञासा में सीता से पूछती हैं–

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गँवारी।

राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने।

(मरकत मणि (पन्ना) की हरिताभनील (राम की) और सुनहरी (लक्ष्मण की) कांति)

श्यामल गौर किशोर बर सुंदर सुषमा ऐन। सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद ससोरुह नैन।

(सर्बरी=शर्वरी–रात)

कोटि मनोज लजावनहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे। (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 115:3–4, 116, 116:1)

(सीता को संबोधित– मालकिन, हमारी धृष्टता क्षमा कीजिएगा। हमें गँवार समझकर बुरा न मानियेगा। ये दोनों राजकुमार बहुत सीधे और सुंदर हैं। लगता है, पन्ना (हरा) और सोना (सुनहरा) ने अपनी चमक इन्हीं से ली है। क्रमशः साँवला और गोरा रंग, किशोरावस्था, परम सुंदर, जैसे सुंदरता के धाम हों। शरद ऋतु की पूर्णिमा के चाँद की तरह इनका मुखड़ा है और शरद् ऋतु के कमल की तरह इनकी आँखें। अपनी सुंदरता से करोड़ों कामदेवों को लज्जित करनेवाले ये आपके क्या लगते हैं?)

सीता की प्रतिक्रिया

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ संकोच सकुचति बरबरनी।
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखन लघु देवर मोरे।
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सैननि। (अयोध्याकाण्ड, 116: 3–7)

(दोनों की ओर देखकर गौरांगी सीता अपनी निगाह धरती में गड़ा लेती हैं। दोहरे संकोच से संकुचितकृन बताने पर ग्राम्य–वधुओं को बुरा लगेगा और बतायें तो राम के बारे में कैसे बतायें! आख़िर हिरणशावक–जैसे सुंदर नेत्रोंवाली और कोयल–जैसी मधुर वाणीवाली सीता ने संकोच और प्रेम से विगलित स्वर में कहाकृजो सहज स्वभाव और सुंदर, गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, वे मेरे छोटे देवर हैं। फिर उन्होंने अपने चंद्र–मुख को आँचल से ढक लिया और राम के शरीर पर एक नज़र डालकर भौंहों को टेढ़ी किया। खंजन पक्षी–जैसी अपनी आँखो को तिरछी किया और इशारे से उन्हें अपना पति बता दिया।)

छह– दाम्पत्य का आदर्श–पति का असमंजस दूर करने की तत्परता

उतरि ढाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुचि एहि नहिं कछु दीन्हा।
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई। (अयोध्या कांड, 101:1–2)

(राम वनगमन, निषादराज गुह की नाव से गंगा पारकर राम, लक्ष्मण और सीता नाव से उतरे और बालुका–तट पर खड़े हो गये। नाव से उतरकर केवट ने दंडवत किया। प्रभु राम यह सोचकर संकुचित हो गये कि केवट को उतराई नहीं दी–उसके लिए कुछ था ही नहीं। पति के मन की बात, उसका संकोच, उसका द्वंद्व तुरंत भाँप लेनेवाली सीता ने खुश–खुश अपनी रत्नजटित अँगूठी निकाली और राम की ओर बढ़ा दिया। किंतु राम जब केवट को उतराई देने लगे, उसे स्वीकार करने के बजाय उसने राम के पैर पकड़ लिये।)

सात– नीतिवचन और नैतिक–बोध

काम–विकल शूर्पणखा का राम से प्रणय–निवेदन निष्फल जाने पर उन्हीं की कौतुकपूर्ण सलाह पर वह लक्ष्मण के पास पहुँच जाती है। लक्ष्मण स्वयं को राम का सेवक बताते हुए उससे जो कहते हैं उच्च कोटि का नीतिवचन है–

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी।
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी। (रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, 16:8)

(सेवक सुख की कामना करे, भिखारी स्वाभिमान की, जुआ, मद्यपान वगैरह का व्यसन पालनेवाला धन की, व्यभिचारी उत्तम गति की, लोभी यश की और अभिमानी धर्म, अर्थ काम, मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों की, तो ये सभी आकाश को दुहकर दूध निकालने की कामना कर रहे हैं।)

खर, दूषण और त्रिशिरा तीनों भाइयों के मारे जाने पर राक्षसी होने के बावजूद शूर्पणखा ने रावण को जो उलाहना दिया, राजनीति और व्यवहार–नीति का मेरुदण्ड हैकृ

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।
विद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रमफल पढें कियैं अरु पायें।
संग ते जती कुमंत्र ते राजा मान ते ज्ञान पान ते लाजा।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी। (अर.का. 20:4–5)
रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि विविध विलाप करि लागी रोदन करन। (अरण्यकाण्ड, सोरठा–21)

(नीति के बिना राजपद, धर्म के बिना धन, ईश्वर को समर्पित किये बिना उत्तम कर्म और विवेकशून्य विद्या के अर्जन में लगा श्रम व्यर्थ जाता है। विषयों के सम्पर्क से सन्यासी, ग़लत सलाह से राजा, अभिमान से ज्ञान और मद्यपान से लज्जा नष्ट हो जाती है। नम्रता से विमुख प्रेम और अहंकार से युक्त गुणवान शीघ्र नष्ट हो जाते हैंकृऐसा नीतिवचन मैंने सुना है।

आठ– पारिवारिक मर्यादा

राम द्वारा बालि–वध। मरणासन्न बालि ने राम से छिपकर उसे मारने का कारण पूछा–

मैं बैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।। (किष्किन्धाकाण्ड, 8:3

राम का उत्तर पारिवारिक सम्बंधों में भारतीय नैतिक परम्परा का निकष है–

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।

(छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्रबधू और कन्या चारों समान हैं। इन्हें बुरी नज़र से देखनेवालों की हत्या में कोई दोष नहीं।)

नौ– वर्षा व शरद ऋतु–वर्णन के ब्याज से मानव–व्यवहार की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति–रामचरितमानस का विलक्षण काव्यांश

वाल्मीकीय रामायण में भी सीता–विरह से विकल राम द्वारा पहले पम्पा सरोवर और फिर सुग्रीव के राज्यारोहण के बाद वनवास की मर्यादानुसार किष्किंधापुरी के बजाय प्रस्रवण पर्वत की कंदरा में रहते हुए वर्षा और शरद ऋतु का मनोहारी वर्णन आता है। किंतु ऋतुवर्णन की इस परम्परा में तुलसी द्वारा उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार के अद्‌भुत प्रयोग से अध्यात्म के गूढ़ तत्वों के साथ व्यवहार–नीति एवं राजनीति का जो अप्रतिम निदर्शन हुआ है वह साहित्य–जगत् को तुलसी की मौलिक देन है। लगता है, यहाँ ऋतु–वर्णन गौण है, यह निदर्शन ही प्रधान है। तुलसी ने भारतीय साहित्य परम्परा में एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया जिसका अनुगमन शायद ही किसी परवर्ती ने किया हो।

कालिदास के ऋतुसंहारम्‌ का उपजीव्य ही भिन्न–भिन्न ऋतुओं का शृंगारिक आख्यान है। भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीयम्‌ एवं माघ के शिशुपालवधम्‌ में छहों ऋतुओं के संयुक्त विलास का जो सौंदर्यांकन हुआ है वह रससिक्त करने के बावजूद तुलसी की इस ऊँचाई से बहुत दूर है। मेरी अल्प समझ में रामचरितमानस का यह सर्वोत्कृष्ट अंश है–

वर्षा ऋतु

लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही' बिरति रत+ हरष जस विष्णुभगत कहुँ देख।13। ('गृहस्थ,+वैरागी)
घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।

दामिनि दमक रही घन माँही। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।।
बरषहिं जलदि भूमि नियराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाए।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई'। जस थोरेहुँ धन खल इतराई। (किनारों को तोड़ती)
भूमि परत भा ढाबर' पानी। जनु जीवहिं माया लिपटानी। ('मटमैला)
सिमिटि–सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई। (किष्किंधाकाण्ड, 13:1–4)

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ।14।।

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी।
ससि' सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी। ('फ़सल)
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा।
महावृष्टि चलि फूटि कियारीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध' तजहिं मोह मद माना। ('विद्वान)
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कालिहि' पाइ जिमि धर्म पराहीं। ('कलियुग)
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपजि न कामा।
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन' उपजें ग्याना।('शिथिल इंद्रियाँ)

कबहुं प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं। (15–क)
कबहुँ दिवस महँ निविड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग'। (15–ख) ('सूर्य)
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।15।

शरद ऋतु

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत पगट बुढाई।
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा।
सरिता रस निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्यागि करहिं जिमि ग्यानी।
जानि सरद रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।
पंक न रेनु सोह अस धरनी। नीति निपुन नृप कै जस करनी।
जल संकोच बिकल भइ मीना। अबुध' कुटुंबी जिमि धनहीना। ('मूर्ख)
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन' इव परिहरि सब आसा। ('भगवद्भक्त)
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि जोरी'।

—('कोई बिरला ही मेरी भक्ति पाता है) (15:1–5)

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि।16।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भयें जैसा।
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नानारूपा।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुलनाशा। (16:1–4)
भूमि जीव' संकुल रहे गए सरद रितु पाइ। ('कीट–पतंगे)
सदगुरु मिलें जाहि जिमि संसय भ्रम समुदाइ।17।

चौदह

भारत और भारत के बाहर रामकथा की व्यापकता और उसमें तुलसी का योगदान

पहले आ चुका है कि लौकिक संस्कृत के आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण का सृजन पाणिनि–काल के बाद (अनुमानतः पांचवीं शताब्दी ई. पू. के आसपास) हुआ होगा। यह भी कि रामकथा इसके बहुत पहले से प्रचलित थी और कुशीलव (गाथा–गायक) उसका गायन करते आ रहे थे। वाल्मीकि ने इस पूर्व–प्रचलित रामकथा के आधार पर राम के यात्रा–वृतांत (राम–वनगमन से राम के अयोध्या लौटकर सिंहासनारूढ़ होने तक की कथा) को उपजीव्य बनाकर रामायण (व्युत्पत्तिगत अर्थ– राम+अयन=राम की यात्रा) नाम से एक प्रबंध–काव्य की रचना की जिसमें (अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक) केवल पाँच काण्ड थे। इन पांच काण्डों में स्वयं वाल्मीकि की कथा कहीं नहीं आती; यह कथा वाल्मीकि को राम का समकालीन दिखाकर भाषाशास्त्र और इतिहास के पटल पर एक असंभाव्य प्रमेय रचती है।

वाल्मीकि–विरचित रामायण में अनुस्यूत श्रीराम के उदात्त चरित्र तथा उनके द्वारा पारिवारिक–सामाजिक मर्यादाओं के पालन हेतु कठोरतम कष्ट उठाने का यह काव्यमय आख्यान धर्म, जाति, भाषा तथा क्षेत्र की सीमाओं को तोड़ कर भारत ही नहीं, एशिया के कोने–कोने में लोकप्रिय हो गया। मंगोलिया से लेकर चीन व जापान होते हुए कम्बोडिया, थाईलैन्ड (बैंकाक), इंडोनेशिया तथा मलयेशिया तक कोई ऐसा देश नहीं, जहाँ इस महाकाव्य की कथाएँ सम्बंधित देश की संस्कृति, लोककथाओं एवं इतिहास का अविच्छिन्न अंग बनकर पुष्पित–पल्लवित न हुई हों। अन्याय के विरुद्ध श्रीराम का संघर्ष, निर्बल वर्गों से उनकी आत्मीयता तथा नैतिक आदर्शों के लिए बड़ा से बड़ा त्याग करने की उनकी तत्परता ने उन्हें भारत ही नहीं, पूरे एशिया का अद्वितीय लोकनायक बना दिया। भारत एवं एशिया के मनीषी कवियों ने विगत दो हजार वर्षों के अंतराल में अपनी–अपनी भाषा में रामकथा लिखी। अपने काव्य को लोकग्राह्य बनाने हेतु स्थानीय रीति–रिवाजों, परंपराओं, लोक–कथाओं आदि के साथ अपनी–अपनी कवि–कल्पना का भी समावेश किया। लिहाज़ा, इन कवियों ने वाल्मीकीय रामायण की मूलकथा में कम–ज़्यादा परिवर्तन कर रामकथा का भिन्न–भिन्न ढांचा निर्मित किया। फ़ादर कामिल बुल्के के आकलन के अनुसार केवल भारत में पाठांतर सहित 300 रामाख्यान उपलब्ध हैं। संभवतः इसी के मद्देनज़र तुलसीदास जी को कहना पड़ा था–

नानाभाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।
कलप भेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये।। (रामचरितमानस, बालकाण्ड, 32: 3–4)

बौद्धों एवं जैनों की रामकथा

वस्तुतः बौद्ध और जैन मत के प्रचारकों के सम्मुख रामकथा एवं सीता व राम के उदात्त चरित्र की व्यापक लोकप्रियता एक गंभीर चुनौती बनकर उपस्थित हुई। इसका प्रत्याख्यान लगभग असम्भव था। इसकी काट में बौद्धों और जैनों ने रामकथा को चित्र–विचित्र आख्यानों से संवलित कर श्रीराम के चरित्र का बौद्धीकरण / जैनीकरण कर दिया और उन्हें बौद्ध / जैन महानायक के रूप में प्रस्तुत किया। शुद्ध गढ़ंत पर आधारित ये प्रस्तुतियाँ अतर्क्य और हास्यास्पद होने के लिए नियतिबद्ध थीं।

बौद्धों द्वारा जातक–कथाओं के भंडार में 'दशरथ जातक' नाम से रामकथा का एक विचित्र और अधूरा पाठ रच दिया गया (अनुमानतः तीसरी–चौथी शताब्दी)। इसके अनुसार वाराणसी के राजा दशरथ के सोलह हज़ार रानियाँ थीं। बड़ी रानी से उन्हें 'राम पंडित' और 'लक्खनकुमार' नाम के दो पुत्र और 'सीता

देवी' नाम की एक पुत्री प्राप्त हुई। पहली रानी के देहान्त के बाद दूसरी रानी से 'भरत' नामक पुत्र का जन्म हुआ। दूसरी रानी ने दशरथ से वचन माँगा कि उसका पुत्र भरत ही राजा बने। यह सुनकर दशरथ अत्यधिक विचलित हो उठे। उन्होंने द्वंद्व की आशंका से राम पंडित, लक्खन और सीता को बारह साल के लिए वन भेज दिया।

वन में एक अतिविचित्र घटना घटी जो भारतीय परम्परा और भारतीय पारिवारिक–सामाजिक व्यवस्था के लिए एक अजूबा थी। वन में राम और सीता ने सगे भाई–बहन होने के बावजूद परस्पर विवाह कर लिया। जैसी कि अपेक्षा थी, दशरथ जातक में गढ़ लिया गया कि वस्तुतः गौतम बुद्ध ही राम हैं, यशोधरा ही सीता हैं, दशरथ शुद्धोदन हैं और भरत हैं बुद्ध के शिष्य आनन्द। दशरथ जातक में सीता हरण और उसके बाद के किष्किंधाकाण्ड और युद्धकाण्ड के सारे प्रसंग गायब हैं। दो अन्य बौद्ध जातक कथाओं– 'अनामकं जातकं' और 'दशरथ कथानकं' में भी राम को बोधिसत्व के रूप में प्रस्तुत किया गया।

बौद्ध इस 'दशरथ जातक' को चीन ले गए। चीन से यह कथा जापान पहुँची। कुछ संस्कृत–ग्रंथों के अनुवादों को मिलाकर जापान में बारहवीं शताब्दी में 'होबूत्शुशू' नामक रामकथा लिखी गई जिसमें श्रीराम का नाम 'तथागत शाक्यमुनि' रखा गया। इसमें शाक्यमुनि के घर आए एक साधु ने उनकी पत्नी का अपहरण कर लिया। वह साधु वस्तुतः एक राक्षस था। इसके बाद इसमें जटायु की कथा और राम की वानरों के साथ मैत्री स्थापित करने से मिलती–जुलती कथाएँ आती हैं किंतु शाक्यमुनि ठहरे अहिंसक! तो इंद्र उनसे प्रभावित होकर छोटे वानर के रूप में राम की वानरी सेना में शामिल हो गए। राक्षस से युद्ध के दौरान जब सभी वानर बेहोश हो गए, छोटा वानर (इंद्र) हिमालय जाकर एक औषधीय पेड़ उखाड़ लाया। अंत में शाक्यमुनि के बाण से राक्षस मारा गया और रानी को मुक्ति मिली।

एक दूसरे जापानी रामायण में श्रवणकुमार की कथा का अनुकरण करते हुए सेमू नाम का चरित्र गढ़ा गया। कैरा देश के राजा का बाण लगने से सेमू की मृत्यु हो जाती है। उसके अंधे माता–पिता इंद्र से प्रार्थना करते हैं कि यदि उनका पुत्र बुद्ध, धम्म और संघ के अनुसार आचरण करता रहा हो तो वह पुनर्जीवित हो जाए! इंद्र उसे जीवित कर देते हैं, माता पिता की आँखें भी ठीक हो जाती हैं। वे कैरा देश के राजा को सीख देते हैं कि भविष्य में शिकार के रूप में वे कभी हिंसा न करें!

जैनों द्वारा रची गई रामकथाएँ कम दिलचस्प नहीं हैं। श्वेतांबर विमलसूरि के 'पद्मचरित' और दिगंबर गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' में राम, लक्ष्मण, यहाँ तक कि रावण भी जैन धर्मानुयायी हैं। जैनियों ने राम का नाम 'पद्म' रखा है। सभी वानर विद्याधर हैं। सबसे विचित्र बात यह कि सीता को रावण की पुत्री बताया गया है। यहाँ राम की 8000 और लक्ष्मण की 16000 रानियाँ हैं। राम (पद्म) चूँकि अहिंसक हैं, रावण को मारने का दायित्व लक्ष्मण उठाते हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें नर्क जाना पड़ता है। इन ग्रंथों के आधार पर तमाम जैन रामकथाओं का सृजन हुआ जिनमें अपभ्रंश का 'स्वयंभू रामायण' तथा कन्नड़ का 'पम्पारामायण' उल्लेखनीय हैं।

उड़िया रामायण के लेखक बलरामदास तो राम, लक्ष्मण, सीता को वनवास के दौरान जगन्नाथ–सुभद्रा–बलराम के सामने ला खड़ा करते हैं। कथा में राम–सीता वगैरह की लंका से वापसी के समय पुष्पक विमान से उड़िया तीर्थों का भी दर्शन करा देते हैं। इस रामायण में यह भी उल्लेख है कि राम की वानरी सेना में कोणार्क के भी बन्दर गए थे। उड़िया रामायण के सोलहवीं शती के आरम्भ में, रामचरितमानस की रचना (1574–76) से पहले लिखे जाने का संकेत मिलता है।

कृत्तिवास–कृत बंगला रामायण के अनुसार राम के बाणों से विक्षुब्ध होकर रावण ने दुर्गा का स्मरण किया। देवी रावण को गोद में लेकर बैठ गईं। यह देखकर राम ने युद्ध बन्द कर दिया और बिल्व वृक्ष के नीचे बैठकर देवी की आराधना में लग गये। पूजा हेतु हनुमान द्वारा लाए गये 108 नीलकमलों में से देवी ने एक कमल चुरा लिया। राम उस कमल के स्थान पर अपने कमल–रूपी नेत्र को बाण से निकाल कर चढ़ाने चले। इस पर देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें विजय का वरदान दिया। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध

लम्बी कविता 'राम की शक्तिपूजा' का कथ्य कृत्तिवास रामायण के उपरोक्त प्रसंग पर ही आधारित है। सर्वविदित है कि निराला के रचनात्मक जीवन का शुरुआती दौर बंगाल में बीता था।

सीता निर्वासन के पीछे लोक–कथाओं और लोकगीतों में जनापवाद से सर्वथा भिन्न एक अन्य कारण प्रचलित है। वह है सीता द्वारा अपनी ननद के कहने पर रावण का चित्र बनाना और उस चित्र को देख कर श्रीराम का क्रुद्ध होना। कृत्तिवास रामायण, कश्मीरी रामायण और अन्य कई रामायणों में इसी कथा को थोड़े हेरफेर के साथ स्थान दिया गया है।

बौद्धों और जैनियों द्वारा रामकथा के मूल स्वरूप में बदलाव का तो निहित उद्देश्य था, किंतु कालिदास के समय (भारतीय मतकृपहली शताब्दी ई.पू. तथा पाश्चात्य मत चौथी–पाँचवी शताब्दी) के पहले से सक्रिय नारी और शूद्र–विरोधी प्रक्षेपकों ने वाल्मीकीय रामायण में सातवाँ काण्ड (उत्तरकांड) जोड़ दिया था। ऐसा प्रतीत होता है, श्रीराम के चरित्र को लांक्षित करने के उद्देश्य से ही उत्तरकांड में सीता–निर्वासन और शंबूक वध के प्रसंग जोड़े गये। इन प्रसंगो को इतनी स्वीकृति मिली कि ये भारत के समुद्री व्यापारियों के माध्यम से कम्बोडिया पहुँच गये और वहाँ की रामकथा 'रामकेर्ति' में सम्मिलित हो गये।

तुलसी के रामचरितमानस में श्रीराम द्वारा निषादराज गुह को गले लगाने, शबरी के जूठे बेर खाने, वन्यजातियों के प्रति सद्भाव रखने तथा वानर–भालुओं की मित्रता एवं सहयोग से दक्षिण और मध्य भारत में अन्यायी एवं निरंकुश रावण के वर्चस्व को समाप्त करते हैं। किंतु तुलसीदास का युगान्तकारी योगदान वाल्मीकीय रामायण के अपने गहन अध्ययन से उत्तरकाण्ड (और बालकाण्ड के भी) आधारहीन प्रक्षिप्त को प्रक्षिप्त के रूप में पहचानने और अपने रामचरितमानस को इससे मुक्त करने में निहित है। उन्होंने वाल्मीकीय रामायण के (प्रक्षिप्त) उत्तरकाण्ड से कोई प्रसंग नहीं लिया और उसका अधिकांश ज्ञान–भक्ति निरूपण को समर्पित कर दिया। इस तरह उन्होंने युगानुरूप ज्ञान (दर्शन) द्वारा मोक्षप्राप्ति के विचार के ऊपर सर्वसुलभ भक्तिमार्ग को प्रतिष्ठित किया और पराजयबोध के अंधकार में डूबे हिंदू–समाज को आध्यात्मिक समानता एवं रामभक्ति का सुलभ साधन प्रदानकर उसमें नवीन आशा का संचार किया।

भारतीय इतिहास, संस्कृति और समाज को तुलसीदास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान इसमें निहित था कि उन्होंने वाल्मीकि रामायण की रचना के बाद से अनेकानेक कवियों द्वारा रामकथा के साथ किए गए अनर्गल प्रयोगों और निहित स्वार्थ वश उसमें किये गये प्रक्षेपों को दरकिनार कर अपनी वस्तुपरक संत–दृष्टि, असाधारण विद्वत्ता तथा अपूर्व काव्यमेधा से श्रीरामचरितमानस–जैसा अद्भुत महाकाव्य दिया जो अवधी की क्षेत्रीय बोली में होने के बावजूद उत्तर भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ साबित हुआ। आज हमारे बीच राम की लोकनायक और महामानव की जो छवि विद्यमान है वह मुख्यतः तुलसी की और उसमें भी उनके हर दृष्टि से उत्कृष्ट प्रबंध काव्य रामचरितमानस की देन है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि फ़िजी, ब्रिटिश गायना, ट्रिनिडाड और टोबैगो तथा मारिशस जैसे ब्रिटिश उपनिवेशों में भारत से 'गिरिमिटिया' मज़दूर बनकर जानेवाले अपने साथ रामचरितमानस की प्रतियाँ ज़रूर ले गये थे। फलस्वरूप इन देशों में रामचरितमानस तथा उसकी भाषा अवधी का प्रभूत प्रचार–प्रसार हुआ।रामचरितमानस में निहित धार्मिक–सांस्कृतिक परिदृश्य ने इन मज़दूरों की भावी पीढ़ियों को भारत और भारतीयता में दीक्षित किया। आज वे कई अर्थों में भारत–निवासियों से अधिक भारतीय हैं।

(नोट– इस भाग के लेखन में काफ़ी सामग्री मेरे घनिष्ट मित्र और सहपाठी स्व. रवीन्द्रनाथ उपाध्याय के एक आलेख से ली गई है। उनके प्रति विनीत श्रद्धांजलि।)

मनोभाषिक साक्ष्यों में 'रामसेतु' का अस्तित्व

दीपेन्द्र कुमार*
प्रो. टी. कमलाबती देवी**

सारांश– *'श्रीराम' और 'रावण' के युद्ध की कहानी 'रामकथा', 'श्रीरामचरितमानस', 'श्रीरामायण', 'कंब–रामायण', 'आनंद रामायण', 'बुद्ध रामायण' आदि सैकड़ों नामों से भारत देश के साथ–साथ विश्वभर के देशों में प्रचलित हैं। श्रीरामकथा की अलग–अलग भाषाओं में निर्मित रचनाएँ होने के कारण लेखकों ने इसकी रचनाओं में अपने–अपने मनोभाषिक दृष्टिकोण को माध्यम बनाया है और यह अलग–अलग रचनाएँ विश्वभर में अलग–अलग नामों व भाषाओं से प्रसिद्ध हैं। 'राम' और 'रावण' के इस युद्ध में विशेष महत्व उस 'रामसेतु' का रहा है, जो भगवान श्रीराम के आदेश पर उनकी वानर सेना द्वारा समुद्र को बांधकर बनाया गया था और इस रामसेतु के मार्ग से ही भगवान श्रीराम और उनकी वानर सेना ने श्रीलंका में प्रवेश किया और रावण का विनाश किया। श्रीराम के आदेश पर सेतु का निर्माण हुआ था, इसलिए उसे 'रामसेतु' नाम दिया गया है। भारत और श्रीलंका तटों को जोड़ने वाले 'रामसेतु' के वास्तविक होने एवं 'रामकथा की सत्यता' को लेकर यहां विस्तृत चर्चा की गई है, इस आधार में श्रीरामसेतु के निर्माण में प्रयोग में लाए गए पत्थर जो आज भी पानी पर तैरते हैं और रामकथा से जुड़े बहुत से मनोभाषिक साक्ष्य व तर्क इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं।*

बीज शब्द– रामसेतु, रामायण, रामकथा, अयोध्या, लंका, राम, रावण, हनुमान, पत्थर, चरित्र, मनोभाषिक, समुद्र, तैरता, निर्माण, डूबता, युद्ध, विजय, विख्यात, मंदिर, प्रचलित, प्राचीन, परंपरा, समुदाय, संदेश, एहसास, प्रमाण, पुष्टि, पीढ़ी, महाभारत, वास्तविक, पक्षधर।

आलेख– भारत देश सनातन धर्म व संस्कृति पर आधारित है। भगवान श्रीराम कण–कण में विराजमान हैं तो नर–नारायण के रूप में पूजनीय भी हैं। भगवान श्रीराम की रामकथा से जुड़े होने के कारण ही देश का प्रमुख त्योहार 'दीपावली' हिंदुओं की आस्था से पारंपरिक हुआ है। भगवान श्रीराम की 'रामकथा' के प्रारब्ध से ही इस पर्व को मनाने का मुख्य आधार स्थापित हुआ है। 'रामकथा' असत्य पर सत्य की विजयगाथा है, जिसे तुलसी ने रामचरितमानस का नाम दिया तो बाल्मीकि ने 'रामायण' का। और वर्तमान तक सैकड़ों की संख्या में रामकथा की इस कहानी को नए–नए नामों से प्रकाशित किया जा चुका है। 'रामकथा' जो कि राम और रावण के युद्ध की कहानी आधारित है, जिसमें श्रीराम की विजय हुई थी, यह विजय श्रीराम की रावण की अनीति, अहंकार और बुराईयों पर हुई, जिसमें रावण के अंत के साथ श्रीराम के उच्च आदर्श–चरित्र की भी विजय हुई। महाकाव्य रामचरितमानस के अनुसार राम की इस विजय–यात्रा में समुद्र मार्ग के ऊपर से बने एक पत्थरों के पुल का विशेष प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग इसमें लगाए गए पत्थरों को लेकर है, जो कि रामायण काल हैं।

भारत और श्रीलंका देश के मध्य में स्थित 'रामसेतु' के निर्माण में खास बात यह रही है कि इस रामसेतु को निर्मित करने में जो पत्थर उपयोग किए गए थे। वह पत्थर असामान्य पत्थर हैं। यह पत्थर पानी पर तैरने वाले पत्थर हैं, अर्थात् पानी में नहीं डूबते हैं और इन्हीं तैरने वालों पत्थरों से समुद्र पर रामसेतु का निर्माण संभव हो सका था। आज भी रामसेतु बहुत प्रामाणिक लगता है, जिसके आधार में जैसे रामसेतु तमिलनाडु और श्रीलंका के बीच मे अब भी है। नासा से चित्र मिले है जिनसे इसकी दूरी रामायण में और जो आज वर्तमान में ठीक प्रामाणिक लगती है। इसकी आयु भी नासा से या कारबन डेटिंग से तथा ग्रंथ में वर्णित ग्रह नक्षत्रों के संयोग से प्रमाणित हो जाती है। अतः साक्ष्यों के आधार में कहा जा सकता है कि रामायण व रामचरिमानस सिर्फ काव्य ही नहीं बल्कि असल में घटित हुई घटना है। क्योंकि आज भी भारत

*** पी–एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर, इंफाल। शोध निर्देशिका एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर, इंफाल।**
**** शोध निर्देशिका एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर, इंफाल।**

के अनेक राज्यों में अयोध्या से लेकर लंका तक जिन स्थानों पर राम वनबास के समय में रहे उनके प्रमाण मिलते है।

रामकथा के अनुसार रामसेतु के पत्थरों के विषय में मान्यता है कि श्रीराम जी की सेना में 'नल' और 'नील' नाम के जो दो वानर सैनिक थे, जिनके हाथ से फेंका हुआ या गिरा हुआ पत्थर व वस्तु पानी में डूबती नहीं थी। इसलिए सेतु के निर्माण में प्रयुक्त किए जाने वाले पत्थरों को दोनों सैनिकों के द्वारा पानी में छोड़ा अथवा डाला जाता था, जिससे कि वह पत्थर पानी में नहीं डूबता था। 'नल' और 'नील' के पीछे की प्रचलित किदवंती यह है कि 'नल' और 'नील' नाम के दोनों वानर सैनिक बचपन में बड़े नटखट थे और पूजा करते समय पूजा में लीन ऋषियों की पूजा सामग्री व मूर्तियों आदि को पानी में फेंक देते थे, जिनसे परेशान होकर ऋषियों ने इन्हें श्राप दिया कि वह पानी में कोई चीज डालेंगे तो वह डूबेगी नहीं और इस कारण से इनके द्वारा फेंकी हुई वस्तुएँ पानी पर तैरतीं थीं और ऋषी अपनी वस्तुओं को पुनः प्राप्त कर लेते थे। इन दोनों को लगे इस श्राप का लाभ रामसेतु के निर्माण में श्रीराम को प्राप्त हुआ। 'नल' और 'नील' को लगे श्राप के कारण है कि वह जो भी पत्थर समुद्र के पानी में छोड़ते थे तो वह पत्थर समुद्र के पानी में नहीं डूबते थे और समुद्र में पानी पर तैरने लगते थे, जो कि सेतु के निर्माण में सहायक सिद्ध होते थे।

रामसेतु निर्माण के विषय में कहा जाता है कि जब श्रीराम ने सेतु बांधने हेतु समुद्र देव का आह्वान किया और सेतु बांधने हेतु सुझाव मांगा तो समुद्र देव ने ही 'नल' और 'नील' की इस श्राप वाली कहानी को श्रीराम को बताया था। इसके बाद श्रीराम जी द्वारा इस पुल निर्माण का कार्य 'नल' और 'नील' के सहयोग से शीघ्र संपन्न कराया। दूसरी एक मान्यता यह भी है कि श्रीराम का नाम जिस पत्थर अथवा शिला पर अंकित किया जाता था, वह भी पानी में नहीं डूबता था। अतः सभी पत्थरों पर समुद्र में छोड़ने से पहले 'जयश्रीराम' लिखा जाता था। ऐसा रामानंद सागर के टी.वी. धारावाहिक 'रामायण' में भी दिखाया गया है, जहाँ वानर सेना पत्थर लाती जाती है और हनुमान जी उन पत्थरों पर 'जयश्रीराम' नाम अंकित करते जाते हैं और वह पत्थर समुद्र पर तैरने लगते हैं। ग्रंथों में भी ऐसा लिखा पाया गया है। दोनों ही तथ्यों के आधार पर रामसेतु के पत्थर पानी पर तैरते हैं, जिससे कि 'रामसेतु' का निर्माण संभव हुआ। पत्त्थर पानी पर तैरते हैं इसे लेकर विज्ञान और धर्म आमने–सामने हैं, पत्थरों का पानी पर तैरना आज भी रहस्य बना हुआ है।

रामसेतु की लंबाई लगभग 30 किलोमीटर है और चैड़ाई लगभग 03 किलोमीटर है। यह सेतु पाँच दिनों में बनकर तैयार हो गया था। इतने विशाल सेतु इसका निर्माण पाँच दिनों में संभव होना भी आश्चर्य की बात है। यह कार्य इन तैरने वाले पत्थरों की सहायता से ही शीघ्र संभव हो सका। विज्ञान का तर्क है कि यह पत्थर ज्वालामुखी से निकलने वाला लावा होता है जो ठंडा होने के बाद इस प्रकार के पत्थर के रूप में बन जाते हैं और वह पानी में तैरते हैं। किंतु जहां यह पुल बना है वहां से दूर–दूर तक ज्वालामुखी पर्वत नहीं हैं। तो यह पत्थर यहां पर कैसे आए, इसका कोई ठीक उत्तर नहीं है। साथ भारत में ही नहीं नहीं हैं ऐसे पत्थर तो श्रीलंका में भी पाए जाते हैं। तमिलनाडु से श्रीलंका तक सेतुमार्ग में ऐसे पत्थर मौजूद हैं। आज 21वीं सदी के दौर में भी कई बार ऐसे पत्थर प्रायः समाचार–पत्रों में देखने अथवा टीवी चैनलों के द्वारा सुनने मिल जाते हैं, जो पानी में डूबते नहीं हैं और पानी पर तैरते हैं। इन पत्थरों का घनत्व पानी से कम होता है और यह पानी के ऊपर ही तैरते रहते हैं। इन पत्थरों को यदि हाथ में उठाया जाए, तो यह आम पत्थर की तरह ही भारी और दिखाई देने वाले होते हैं। किंतु इन पत्थरों का पानी के ऊपर तैरना ही इनकी प्रकृति को सामान्य पत्थरों से अलग करता है। क्योंकि सामान्य पत्थर कितना भी छोटा हो वह तुरंत डूब जाता है, परंतु इस प्रकार के पत्थरों के बड़े–बड़े हिस्से व बड़ी–बड़ी शिलाएँ भी पानी पर तैरती हैं, जो सेतु के निर्माण की आधार बनीं। वहीं, दूसरी ओर ऐसे पत्थरों के विषय में आम लोगों का मानना होता है कि यह राम सेतु के पत्थर हैं जो कि किसी कारणवश रामसेतु के क्षेत्र से यहां उनके क्षेत्र में आ गए हैं अथवा किसी व्यक्ति द्वारा रामसेतु क्षेत्र से लाए गए होते हैं।

पौराणिक मान्यता के अनुसार श्रीरामसेतु में प्रयुक्त पत्थर पानी पर तैरते हैं। पत्थर कैसे तैरता है पता नहीं, किंतु व्यक्तिगत रूप से एक ऐसा पत्थर मैंने हरिद्वार में एक मंदिर के परिसर में देखा था, जो

पानी में तैरता दिखाई दे रहा था। वह पत्थर लोहे की जालियों के अंदर था और वहां जाली के बाहर ताला लगा था, और अंदर पानी का एक बड़ा पात्र लगभग जिसमें 100 लीटर पानी था, जिसमें वह पत्थर जो कि लगभग 50 किलोग्राम का होगा, वह तैर रहा था। वह मुझे देखने में लगता है कि वह कई वर्षों पहले वहां रखा गया था, उसके पात्र में नीचे कायी व पत्थर का वह हिस्सा जो पानी के अंदर था, नीचे की तरफ का वह भी कायी लगा हुआ था। उस जाली पर वहां एक पट्टिका लगी थी जिसपर 'रामसेतु का पत्थर' लिखा हुआ था। उस जाली के अंदर कई सारे सिक्के पड़े हुए थे, मैंने भी अपनी धार्मिक भावना से प्रेरित होकर एक सिक्का उसमें डाल दिया। मन में आया कि शायद हो सकता है कि यह एक पैसे कमाने का कोई तरीका हो, लेकिन सिक्के काफी समय के पड़े थे, तो मुझे नहीं लगता कि सिक्कों का ज्यादा संबंध उससे था। क्योंकि अगर सिक्के उठाए जाते होते तो वहां नये सिक्के होते या ज्यादा पुराने नहीं होते। ताला भी जंग लगा हुआ था जो जाली पर लगा हुआ हुआ था। वह सिक्के तो भक्तों की श्रद्धा मात्र से अर्पित किए गए थे। किंतु वह पत्थर जरूर तैर रहा था और मैंने देखा था, हांलाकि उसे छूकर नहीं देखा और ना ही हाथ में उठाया। किंतु देखने से पता चल रहा था कि वह पत्थर ही है। इसके अलावा कुछ वर्ष पहले लगभग तीन–चार साल हुए होंगे, एक दिन अमर उजाला, न्यूज पेपर में एक फोटो वाली खबर थी जिसमें कुछ लोग हाथ में एक पत्थर उठाये हुए थे और फोटो कराकर छपवाया हुआ था, जिसके कैप्शन में 'पानी में तैरने वाला पत्थर' था। वहां के स्थानीय निवासी को यमुना नदी के किनारे पर यह पत्थर तैरता हुआ मिला था। वह उसे अपने गांव ले आया और बाद में गांव वालों के पास से खबर न्यूज पेपर के पत्रकार के माध्यम से अखबार की खबर बनी। बाद में उन्होंने भी वह पत्थर अपने किसी स्थानीय मंदिर में रखा दिया था। यदा–कदा इस प्रकार के पत्थरों की कथाएँ लगभग सभी लोगों द्वारा देखी अथवा सुनी गई होंगी, ऐसा मेरा मानना है।

सनातन धर्म के अनुयायी और हिंदु धर्म के पक्षधर 'श्रीरामकथा' की सत्यता के आधार में 'रामसेतु' को साक्ष्य मानते हैं। हालांकि रामकथा की सत्यता को लेकर वैज्ञानिक, विशेषज्ञ व इतिहासकारों की अपने–अपने नकारात्मक और सकारात्मक तथ्यों को लेकर वैचारिक मतभेदों के बीच शोध, चर्चा–परिचर्चा व बहस हमेशा से ही होती आ रही है। वर्तमान में अयोध्या के मसले पर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के उपरांत श्रीराम मंदिर निर्माण के उपरांत श्रीरामकथा कहानी को सत्य माना जाता सकता है और इस कहानी के आधार पर रामसेतु और इसके तैरने वाले इन पत्थरों को रामकथा के काल के संबंध से जोड़ा जाना भी सही हो सकता है। 'रामायण' वास्तविक है या काल्पनिक इस पर बहस होना कोई नहीं बात नहीं है। धर्म और विज्ञान इस विषय पर सदैव एक दूसरे के विपरीत रहे हैं, दोनों का अपना–अपना अलग मत और तर्क हैं। किंतु धरातल पर यदि रामकथा के तौर पर साक्ष्यों का मापा जाए तो जहन में सकारात्मकता का उद्भाव प्रकट हो जाता है। भारत के उत्तर और दक्षिण के भागों में रामायण के साक्ष्यों को लेकर जनमानस में अपनी व्यक्तिगत राय और भावनाएँ जुड़ी हैं। उत्तर भारत में अध्योध्या से लेकर दक्षिण भारत में श्रीलंका तक श्रीरामकथा से जुड़े कई रहस्य व साक्ष्य आज भी मौजूद हैं, जो पौराणिक कथाओं और किदवंतियों को रामायण कहानी अथवा श्रीराम से जुड़े होने के एहसास कराते हैं। धार्मिक ग्रंथों के आधार पर धरती पर सबसे प्राचीन धर्म सनातन धर्म है और इस धर्म में प्रमुख पर्व 'दीपावली' के साथ–साथ 'रामनवमी', 'दशहरा', 'हनुमान जयंती' आदि पर्व भी मनाए जाते हैं। भारत में इन त्योहारों पर राजपत्रित अवकाश घोषित किया जाता है। यह भी एक साक्ष्य ही हैं जो जनमानस की धार्मिक भावनाओं व एकता के संदेश को दर्शाता है, जिसे सरकार स्वीकारती है। सरकार भी जानती है कि भारत नागरिकों की श्रद्धा भावना भगवान श्रीराम के प्रति समर्पित है और संस्कृति में रामकथा मिली हुई है। धार्मिक आयोजनों में अखण्ड रामायण का पाठ हो अथवा हनुमान चालीसा का पाठ, प्रायः कभी भी कहीं भी देखने का मिल जाएगा। यह सब पीढ़िगत चलता चला आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा, क्योंकि कि भगवान श्रीराम मर्यादाओं के उत्तम पुरुष हैं, तो सनातन धर्म की आधार शिला।

हिंदुओं के लिए वर्णित श्रीराम भगवान हैं तो अन्य धार्मिक समुदायों में प्रचलित श्रीराम एक आदर्श प्रधान महापुरुष हैं। आमतौर पर यदि देखा जाए तो आज भगवान श्रीराम या रामायण से संबंधित किसी भी पात्र अथवा व्यक्ति को आज के दौर के किसी भी इंसान ने नहीं देखा है। आज के दौर के सभी लोग पुरानी

परंपरागत कहानियों व पीढ़िगत सुनी हुई कहानियों, प्रचलित किदवंतियों अथवा उपलब्ध धार्मिक ग्रंथों को आधार मानकर श्रीराम के अस्तित्व को मानते चले आए हैं। सामाजिक रूप में आज के लोग भगवान श्रीराम और उनसे जुड़ी हुई व सदियों से चली आ रहीं पारंपरिक परंपराओं को निभाते और मानते चले आए हैं। भारत की विभिन्न भाषाओं तथा लोक गीतों में श्रीरामकथा तथा रामलीला का मंचन होता चला आ रहा है। यह सब सनातन धर्म से जुड़ा होने के साथ कण–कण में राम के समान ही देश की मिट्टी और संस्कृति में मिश्रित है। संसार भर के विभिन्न देशों में श्रीरामकथा को स्थानीय लेखकों ने अपने कौशल व विवेक से निर्माण कर अनेक नामों से अपनी मातृभाषाओं में समाज को उपलब्ध कराया है। 'रामायण' अथवा श्रीराम की कहानी 'रामकथा' दुनिया भर में तीन सौ से अधिक नामों व रूपों में प्रचलित है। जनमानस की सुविधा और सुलभता कि लिए विद्वानों ने रामकथा को क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवादित व लिखित रूप में उपलब्ध कराने के साथ–साथ टी.वी. सीरियल, धारावाहिकों एवं नाटकों आदि के माध्यम समाज को उपलब्ध कराया है। साथ ही समाज के विभिन्न वर्ग के संगठन व समुदायों के जनसमूहों द्वारा भी इन्हें मनोरंजन के रूप में ह्रदय से स्वीकार किया जाता रहा है।

धार्मिक अनुष्ठानों में धर्मगुरुओं, कथा–वाचकों अथवा कलाकारों द्वारा अखण्ड रामायण, हनुमान चालीसा एवं रामलीला आदि के मंचन द्वारा भी समाज में रामकथा का श्रवण व दर्शन होता रहता है। इन प्रस्तुतियों के द्वारा रामकथाओं को लोगों द्वारा हमेशा से ही खूब सराहा जाता रहा है। 'रामायण' अथवा 'रामकथा' से जुड़ी कहानियों और पात्रों की सत्यता पर सदैव से खोज और शोध कार्य होते चले आ रहे हैं। मीडिया के पत्रकारों के स्ट्रिंग ऑपरेशन रहे हों या इतिहासकारों के गहन अध्ययन। विज्ञान के तर्क हों या धार्मिक आस्था और विश्वास। केंद्र में रामकथा के साक्ष्य शोध का आधार हमेशा से रहे हैं। राम के अस्तित्व को मानने वाले रामायण को सत्य मानते हैं और स्वीकारते हैं, तो नास्तिक लोग एक बनी हुई कहानी मानते हैं। रामकथा को लेकर खोजी पत्रकारों की खबरों का हवाला हो या पारंपरिक पर्वों की धूमधाम। राम के अस्तित्व का आधार और साक्ष्य जहां–तहां अपनी सत्यता की उपस्थिति दर्ज कराते ही हैं। कभी खबरों से, कभी घटनाओं से, तो कभी पारंपरिक होने वाली कथाओं व धार्मिक आयोजनों से। मन में रामायण के प्रति श्रद्धा और भक्ति का जो संगम देखने को मिलता है उससे श्रीराम की कहानी को आंतरिक मन से स्वीकृति मिल जाती है।

सन् 1528 में अध्योध्या के राम मंदिर का ध्वस्तकर मुगल शासक बाबर द्वारा मस्जिद का निर्माण कराया गया था। जिसके कारण उस मस्जिद को बाबरी मस्जिद का नाम दिया गया था। सन् 1990 में मस्जिद को हिंदुओं के द्वारा गिरा दिया गया। बाबरी मस्जिद का ढाँचा और राममंदिर का यह मुद्दा कोर्ट में चला आ रहा था, जिसमें तमाम सुबूत और साक्ष्य के आधार पर मंदिर निर्माण ट्रस्ट को और हिंदू समाज को मंदिर बनाने की स्वीकृति मिल गई। यहाँ बाबर द्वारा मंदिर तोड़ा जाना 497 वर्ष पुरानी बात है, जो कि कुछ पीढ़ियों के अंतराल पूर्व की बात है कि मंदिर वहां पर था। अब मंदिर कितना पुराना था यह बात और पहले की है, जो कि मंदिर के अवशेषों के जाँच पर आधारित होती है। कुछ पीढ़ियों के पुरानी बात से यदि सच पूरा नहीं आ सकता तो कुछ तो सच आया ही होगा। अतः मंदिर वहाँ पर था जो कि श्रीरामकथा के अस्तित्व का बड़ा साक्ष्य है। एक चीज और है कि यदि लगभग 500 वर्ष पूर्व यदि मुख्य मंदिर को तोड़ा जा सकता है तो उसके पूर्व में श्रीरामकथा के साक्ष्यों को मिटाया गया होगा इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता है। खास बात यह है कि रामसेतु समुद्र के अंदर है, यदि वह समुद्र के बाहर जमीन पर होता, तो निश्चित रूप से वह ज़मीदोज किया जा चुका होता। क्योंकि जब उस जबरन धर्मांतरण कराने वाले दौर में श्रीराम के मूल मंदिर को नहीं बक्शा गया, तो रामसेतु का बच पाना तो मुश्किल हो जाता।

दुनिया को चलाने वाले भगवान श्रीराम आज तक देश को चलाने वाली राजनीति में भी अहम भूमिका निभाते आए हैं, जब भी चुनाव आते तो मंदिर के मुद्दों को लेकर राजनीति बिसात बिछ जाती हैं। स्थिति यह है कि राम मंदिर मुद्दे में हिंदुओं के समर्थन वाले दल व संगठन श्रीराम के नाम पर वोट एकत्रित करते हैं तो गैर–हिंदुओं के दल श्रीराम के काल्पनिक होने सहारा लेकर अपने वोट बढ़ाने की जुगत करते हैं। राम मंदिर के निर्माण में श्रीराम की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा हो गई। आमतौर पर प्राचीन मंदिरों में पुरानी

मूर्तियों, कलाकृतियों व नक्काशी देखने को मिलती है, जिसमें हिंदुओं के मंत्र व कहानी के चित्र बनाए व सजाए गए होते हैं। इनको यदि इतिहास के नजरिए से देखा जाए तो इनकी कहानी पारंपरिक विशेषताओं का वर्णन करती है। सभी का कुछ ना कुछ बड़ा इतिहास होता है। आज के पुराने नगरों और बड़े–बड़े शहरों में देखा जाए तो कई प्राचीन मंदिरों में भगवान की वर्षों पुरानी मूर्तियों की उपस्थिति व स्थापनाएं भी मन में रामकथा के विश्वास को बल देती है। यदि और थोड़े समय से पहले जाया जाये तो भगवान राम के सिक्कों का प्रचलन था। रोम में भगवान श्रीराम के नाम की मुद्रा का प्रचलन होना भी एक सत्य है। कभी खुदाई में पुरानी मुर्तियों का निकलना तो कभी पुरानी सभ्यताओं में भगवान की मूर्ति पूजा व कला का उदाहरण भी रामकथा की सत्यता को इंगित करता है।

हम भारतीय हैं, उत्तर भारत और दक्षिण भारत की बात करें हैं तो रामकथा की बात पक्षपात में नजर आती है कि हम भारतीय हैं इसलिए रामकथा की पुष्टि करते हैं। किंतु यदि हम श्रीलंका के लोगों और वहां की संस्कृति, प्रचलित कहानियों और पारंपरिक लोककथाओं की जानकारी करें, तो रावण और उसकी पूरी वंशावली का इतिहास और उसके साक्ष्य आपको आसानी से मिल जाएँगे। साथ ही आज भी वहां ऐसे स्थान हैं जहां आज भी रावण की पूजा होती है। रावण द्वारा रचित 'शिवताण्डवस्त्रोत' भगवान शिव की आराधना और भक्ति में आज भी गाया जाता है। रामेश्वरम् में स्थित भगवान भोलेनाथ का शिवलिंग है। माना जाता है कि इस शिवलिंग को स्वयं श्रीराम के द्वारा स्थापित किया गया है, वह भी सत्यता की कढ़ी का हिस्सा है। वर्तमान में श्रीरामकथा से जुड़े कई साक्ष्य हैं जो विज्ञान भी स्वीकार करने पर मना नहीं कर सकती है। हालांकि विज्ञान अपने अलग–अलग तर्क दे सकती है, अपने बचाव में सवाल तो खड़े कर सकती हैं लेकिन इन साक्ष्यों का नकार नहीं सकती है। प्रायः हिंदुओं के परिवारों में सदैव से रामकथा की कहानी और धार्मिक ग्रंथ 'रामायण' को विरासत में पाया जाता है। श्रीराम के मर्यादित आदर्श अपनी कहानी से विश्वभर में समाये हुए हैं। यूँ तो सदा ही रामकथा पर फिल्में, कहानियाँ, धारावाहिक बनते चले आ रहे हैं। आज भी नये–नये टी.वी. चैनल्स नये–नये कलाकारों के साथ रामायण की कहानियों व रामकथाओं के घटनाक्रमों को नये–नये ढंग से प्रस्तुत करने में पीछे नहीं हैं, इसका सीधा–सा एक कारण श्रीरामकथा का जनमानस में लोकप्रियता का होना है। क्योंकि जनमानस आज भी रामकथा को हर रूप में पसंद करता है। कथा के पात्र कोई भी हों, मंचन करने वाले कलाकार कोई भी हो, दर्शक इससे प्रभावित नहीं होता है। वह जानता है कि कथा श्रीराम की है। इस कथा के विभिन्न पहलुओं को जानने की जिज्ञासा ही उसे रामकथा से जोड़ती है। वह नयी–नयी रामकथा की कहानियों को भी दर्शक बड़े चाव से देखना पसंद करते हैं।

दूरदर्शन के चैनल पर 'रामायण' धारावाहिक ने अपनी जो छाप आम जनमानस के हृदय पर छोड़ी है, वह श्रीराम के आदर्श रूप को भगवान की मान्यता प्रदान करता है। रामायण का यह धारावाहिक इतना लोकप्रिय रहा है कि लोग इस धारावाहिक के प्रसारण के समय तक अपने सभी कार्यों से निवृत्त होकर अथवा अपने कामों को छोड़कर पहले इसे देखना पसंद करते थे। लगभग दो दशक पहले जब मोबाइल, डिश टी.वी. और इंटरनेट की व्यवस्था नहीं थी, आबादी के कुछ प्रतिशत लोगों के घरों में ही टी.वी. हुआ करते थे, वहां पर लोग एकत्रित होकर रामायण को देखा करते थे। पूरे–पूरे गांवों के एक–दो घरों में ही टी. वी. हुआ करते थे। मुझे याद है कि आज से लगभग 25 वर्ष पहले उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में ब्लाक ताँतपुर के सिंगरावली गांव में एक खुले स्थान पर टी.वी. को ट्रैक्टर की बैटरी से लगाकर चलाया जा रहा था और लोग जमीन पर बैठकर बड़े मजे से रामायण का आनंद ले रहे थे। मैं भी वहां उपस्थित था और मैं भी यह सब देख रहा था, लेकिन मेरे लिए रामायण से अधिक वह सब कुछ देखना बहुत खास था। चूंकि कि उस गांव में लाइट की सुविधा नहीं थी और टी.वी. किसी व्यक्ति की शादी में उसको मिली हुई थी, तो वह व्यक्ति अपनी टी.वी. ले आया और गांव वालों को रामायण दिखाने के लिए टी.वी. उपलब्ध करा दी। लाइट की व्यवस्था के लिए दूसरे अन्य व्यक्ति ने अपने ट्रैक्टर से बैटरी निकाली और टी.वी. से जोड़कर टी. वी. चलने लगी। गांव के लोग टी.वी. देखने को उमड़ पड़े और वहां एक खुला सिनेमा हॉल बन गया। वह यादगार लम्हा जो गांवों में किसी धार्मिक कार्यक्रम के समान था, मुझे बहुत पसंद आया था और मेरी स्मृति में अमर हो गया।

अभी हाल ही में श्रीरामकथा में वर्णित कहानी से जुड़े 'रामसेतु' पर फिल्म रिलीज हुई है। इस फिल्म में मुख्य कलाकार अक्षय कुमार ने इतिहासकार के रूप में 'रामसेतु' से जुड़े साक्ष्यों को प्रस्तुत किया है। वह कलाकार श्रीलंका में जाकर श्रीरामकथा के साक्ष्य के रूप में कुछ चीजों को संकलित करता है। श्रीलंका के उपस्थित राजा रावण से संबंधित कई जानकारियाँ एकत्रित करता है। कहानी के अंत में रामायण के प्रमुख पात्र श्री हनुमान जी के उपस्थिति के साक्ष्य कलाकार को मिलते हैं। श्रीरामकथा के अनुसार आज भी श्री हनुमान जी इस धरती पर मौजूद श्रीरामकथा के एक जीवंत सदस्य हैं, जो धरती पर सनातन धर्म के उत्थान और रक्षा के लिए सदैव के लिए अज़र और अमर रूप में उपस्थित हैं।

'रामसेतु' फिल्म में कहानी जो भी हो और फिल्म के अनुसार रामसेतु के निर्माण में घटनाक्रम कुछ भी रहा हो। लेकिन इस फिल्म के अंत में श्री हनुमान जी की उपस्थिति के एहसास होने से फिल्म की पटकथा का सार 'श्रीरामसेतु' एवं 'श्रीरामकथा' की सत्यता का प्रमाणिक होने का संदेश देता है। क्योंकि फिल्म में रामसेतु से संबंधित साक्ष्य फिल्म कहानी के अंतर्गत श्रीलंका में मिल जाते हैं, किंतु फिल्म के अंत में हनुमान जी की उपस्थिति जो पूरी फिल्म में रही, वह रामकथा की सत्यता का साक्ष्य व संकेत है। कहने का तात्पर्य है कि इस फिल्म में श्रीरामसेतु के अस्तित्व की पड़ताल के बाद उसके वास्तविक होने के साक्ष्य साबित हो जाते हैं। साथ ही इन साक्ष्यों के साबित होने के बाद रामकथा की कहानी के प्रति भी सत्यता की पुष्टि श्री हनुमान जी की उपस्थिति से मानी जाती है। कुल मिलाकार इस कहानी में रामकथा की सत्यता और श्रीराम के प्रति आस्था की विजय दिखाई जाती है। फिल्म के अंत में श्रीराम के परमभक्त हनुमान जी, जो फिल्म की कहानी में एक पात्र होते हैं और वह भेष बदल पर अपनी परस्पर भूमिका निभाते हुए मौजूदगी से श्रीरामकथा को सत्यार्थ करते हैं। फिल्म की कहानी में भगवान श्रीराम और रामायण से संबंधित साक्ष्यों को एकत्रित करने के लिए मुख्य कलाकार को श्री हनुमान जी की सहायता मिलती है। श्री हनुमान जी एक मानव के रूप में उनके साथ रहते हैं और उन्हें श्रीलंका में हर उस स्थान पर पहुँचने में सहायता करते हैं जो रामकथा के वास्तविक होने के साक्ष्य के रूप में काम आते हैं। फिल्म के अंत में कहानी की कथा तब पीछे छूट जाती है, जब कलाकार को श्री हनुमान जी के बारे में मालुम होता है, वह इसके बारे में कुछ भी नहीं जानता है कि श्री हनुमान जी भी उसके साथ रहे थे। यह जानकारी उसे अंत में मिलती है कि जिसका वह सहयोग ले रहा होता है, असल में वह सहायता करने वाला सहायक कोई और नहीं बल्कि रामभक्त श्री हनुमान जी ही थे, जो रूप बदल कर उसकी सहायता करते हैं और उसे श्रीलंका में लेकर जा श्रीरामकथा से जुड़े हुए अहम साक्ष्य उपलब्ध कराते हैं। फिल्म में कलाकार की सहायता करने वाले सहायक के रूप में हनुमान जी, फिल्म में बात–बात पर, बार–बार अपने द्वारा किए गए कार्य के बदले लेने वाले पैसे का हिसाब लिखते रहते हैं, वह हर काम के बदले में लेने वाली फीस डायरी में लिखते रहते हैं, ताकि अंत में वह राशि इकट्ठी ले सकें। किंतु सहायक कलाकार के फिल्म से बाहर होने पर फिल्म के अंत में जब वह डायरी कलाकार द्वारा देखी जाती है, तो उसमें सिर्फ–सिर्फ जयश्रीराम और जयश्रीराम ही लिखा होता है, जयश्रीराम के नामों से वह पूरी की पूरी डायरी भरी हुई होती है और वह कलाकार की समझ में आ जाता है कि वह सहायक कोई और नहीं बल्कि अंजनी पुत्र श्री हनुमान जी ही थे। कुल मिलाकर यह फिल्म रामकथा के धार्मिक और पौराणिक कथा होने पर बल देती है।

फिल्म की कहानी के अंतर्गत समुद्र की गहराइयों में श्रीरामसेतु का मिलना, श्रीरामसेतु के निर्माण में लगा पत्थर जो पानी पर तैरता है का मिलना, पत्थर की आयु और रामकथा की कहानी के बीते समय की में समानता का होना, श्रीलंका में रामकथा से जुड़े पौराणिक स्थलों का मिलना, लंका के राजा रावण से जुड़ी एतिहासिक जगहों की जानकारी मिलना, श्रीलंका के एक सीमित क्षेत्र में संजीवनी बूटी का मिलना, यह वही संजीवनी पर्वत जो श्री हनुमान जी द्वारा श्री लक्ष्मण के मूर्छित होने पर लाया गया था और वह पर्वत आज भी वहीं मौजूद है और संजीवनी उस पर मिलती है, एक नक्शा जो श्रीलंका की पुरानी भाषा लिपि में मौजूद था, जिसमें रावण के महल, पर्वत, अशोक वाटिका आदि के साक्ष्य मौजूद थे, का मिलना रामकथा की कहानी की सत्यता की ओर इशारा करते हैं। फिल्म के आखरी समय पर जब कहानी पूरी हो जाती है और तो फिल्म के अंत में श्री हनुमान जी की उपस्थिति का एहसास होना! आज भी इस फिल्म 'रामसेतु' के

माध्यम से राम–रावण की कहानी को साक्ष्यों के द्वारा स्वीकारते हुए श्रीरामकथा के वास्तविक होने पुख्ता समर्थन करना है। हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि इस फिल्म में दिखाये गए साक्ष्य कितने सही हैं, मनगढंत हैं अथवा पूर्ण रूप से काल्पनिक। किंतु यह स्पष्ट अवश्य है कि इस फिल्म के द्वारा सीधे तौर पर रामकथा और श्रीराम के अस्तित्व की पुष्टि की गई है, जो हिंदुओं की धार्मिक भावनाओं और ग्रंथों की सत्यता को बल देता है। रही बात हनुमान जी की मौजूदगी की तो उसके लिए 'महाभारत' ग्रंथ को देखा जा सकता है। महाभारत रामायण के बाद में हुआ था। जिसमें आप महाभारत युद्ध में अर्जुन के रथ पर श्रीहनुमान को ध्वज के साथ देख सकते हैं। वहीं भीमसेन को शक्ति का उन्माद होने पर बजरंग बली ने उन्हें भी दर्शन देकर उनकी शक्ति का मद तोड़ दिया था, यह कहानी भी महाभारत में वर्णित है। उत्तर भारत में प्रचलित 'श्रीरामायण' के रचियता भगवान महर्षि वाल्मीकि हों या 'श्रीरामचरितमानस' के रचियता महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी दोनों की रचनाओं ने भगवान श्रीराम को कहानी 'रामायण' अथवा रामकथा के माध्यम से विश्वभर में व्यापक स्तर पर प्रसिद्धि दिलाने का काम किया है। इसके साथ ही दक्षिण भारत के प्रसिद्ध महर्षि कंबन ने अपनी रचना 'कंब–रामायण' अथवा 'रामावतारम्' के माध्यम से भी प्रसिद्ध हासिल की है। साथ ही उन्होंने दक्षिण भारत को रामकथा की कहानी का एक अलग ही बोध कराया है।

ऋषि कंबन की कहानी 'रामावतारम्', 'वाल्मीकि रामायण' और 'तुलसी की मानस' की कहानी से कुछ घटनाओं पर मतभेद व्यक्त करती है। किंतु कहानी का उद्देश्य, पात्र और पटकथा वही है। इसी प्रकार विश्वभर में प्रचलित रामकथा के अन्य रचनाकारों की रचनाओं में कहीं–कहीं पर कहानी में भाव के अंतर व तो कहीं वैचारिक मतभेद मिल सकते हैं। किंतु कहानी श्रीराम के आदर्श पर केंद्रित होती हैं, जो रामकथा की सत्यता को पुष्टि प्रदान करने का काम करती हैं। क्योंकि यह कथा व कहानियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी प्रकाशित व प्रसारित होती चली आ रही हैं और इनकी मूल कॉपी अथवा पाण्डुलिपियों को भी मूल रूप में उपलब्ध एवं प्राप्त किया जा सकता है। यह साक्ष्य रामायण व रामकथा की सत्यता का एक बिंदु हो सकते हैं। क्योंकि यह वह बिंदु हैं तो हमारे और रामकथा के सत्यता की दूरी के मध्य में स्थित है। इन बिंदुओं की रामकथा में सत्यता की जो निकटता है, वह निकटता हमसे काफी दूरी पर है। कहा जा सकता है कि 'रामायण' की सत्यता इन कहानियों के जितना समीप है, उतना ही हमसे दूरी पर है।

भारत में प्रत्येक राजनैतिक दल अपने प्रचार अथवा प्रसार हेतु किसी भी घटनाक्रम को श्रीराम और धर्म से जोड़कर कभी भी कोई भी विवाद के रूप में राजनीति का मुद्दा तैयार करने मौका व्यर्थ नहीं जाने देते हैं। कहा जाए तो गलत नहीं होगा कि मानने वाले लोगों के हृदय में श्रीराम निवास करते ही हैं, न मानने वालों के मन में भी उनका स्थान है। राम, रामसेतु अथवा राम मंदिर, राम को सदैव समाज में किसी ना किसी रूप में चर्चा का हिस्सा बनाया जाता रहा है। अयोध्या के राम मंदिर का विवाद तो न्यायालय के द्वारा दिए गए फैसले के उपरांत मंदिर निर्माण के रूप में पूर्ण हो गया। विवाद में न्यायालय ने मंदिर की पक्ष में निर्माण की स्वीकृति दे दी, किंतु आज भी मथुरा का मंदिर–मस्जिद विवाद और बनारस का मंदिर–मस्जिद विवाद न्यायालय के अधीन हैं। जिसका कब फैसला होगा और क्या फैसला होगा भविष्य में तय होगा। फिलहाल अयोध्या के राममंदिर के निर्माण का कार्य पूरा हो रहा है और उसमें श्रीराम की मूर्ति स्थापना भी हो गई है।

मंदिर–मस्जिद का मुद्दा हो या धार्मिक मुद्दा किसी ना किसी रूप में सामाजिक संगठन अथवा सामाजिक ठेकेदारों के मध्य धर्म के पक्षधर होने से विवाद बना ही रहता है और शायद यह विवाद परंपरा परस्पर बनी रहेगी। अयोध्या का चर्चित राममंदिर मुद्दा अदालत में विजयी घोषित हुआ और न्यायालय के निर्णय के आधार पर रामंदिर का निर्माण भी पूर्ण हो गया। रामसेतु नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। रामसेतु है और उसका अस्तित्व है, उसकी सत्यता को अंतरिक्ष से भी देखा जा सकता है। रामसेतु तैरते पत्थरों से निर्मित है जो कि पानी में डूबते नहीं हैं। अतः रामसेतु है, इसलिए रामकथा की कहानी भी सत्य है। इसके अतिरिक्त रामकथा के संबंध में अन्य साक्ष्य के रूप में उपलब्ध 'अयोध्या' और 'श्रीलंका' स्थान हैं तो उत्तर भारत की प्रसिद्ध रामलीला। देश–विदेश में मनाए जाने वाले दीपावली 'दीपोत्सव', दशहरा 'रावण, कुंभकर्ण, मेघनाथ दहन', रामनवमी, हनुमान जयंती राष्ट्रीय पर्व हैं तो प्रचलित 'वाल्मीकि रामायण',

'श्रीरामचरितमानस' एवं 'रामावतारम्' जैसे धार्मिक ग्रंथ। श्रीलंका में स्थित संजीवनी पर्वत, अशोक वाटिका, रावण का किला, रावण झरना, रावण का हैलीपैड 'पुष्पक विमान' आदि स्थान रामकथा की मौजूदगी के साक्ष्य के रूप में देखे जा सकते हैं। रामकथा में पंचवटी स्थान का वर्णन है जहां से माता सीता का हरण हुआ था, सीता के हरण से लेकर जटायु के संघर्ष की कथा रामायण में वर्णित है। जटायु की स्मृति में एक मंदिर जो गुजरात में बनाया जा रहा है, जटायु के संघर्ष की कहानी बयां करता है। जटायु के प्राण बलिदान की कहानी रामकथा में समाहित है। हिंदुओं के ह्रदय से निकलने वाले श्रीराम के नाम का उच्चारण हो अथवा सनातन सभ्यता के धार्मिक अनुष्ठानों के जयघोष। श्रीराम का नाम हमेशा से ही ऊर्जा के श्रोत का भंडार रहा है, जो जनमानस में ऊर्जा संचार का कार्य करता है। श्रीराम और उनकी कथा को भक्तों के द्वारा दैनिक वाचन, पठन, श्रवण अथवा स्मरण आदि के माध्यम से स्तुति के रूप में अपनाया जाना ही श्रीरामकथा के सत्य होने का जीवंत उदाहरण है।

निष्कर्ष :– पौराणिक रामकथा के वर्णित रामसेतु के वर्तमान में मौजूद होने के साक्ष्य धरातल पर मिलते हैं, इसका मतलब यह है कि रामसेतु के वास्तविक होने की बात को आसानी से नहीं झुठलाया जा सकता है। जब रामसेतु का मौजूद होना सत्य है, तो श्रीरामजी की कथा भी असत्य नहीं हो सकती है, इसमें कोई दोराय नहीं है। जब श्रीराम कथा की कहानी सत्य होने और रामसेतु के सत्य होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं, तो सेतु में लगे पत्थर कथा के अनुरूप ही होंगे, क्योंकि कथा में रामसेतु का वर्णन सही है तो उसके निर्माण में प्रयुक्त पत्थरों के विषय में संशय की संभावना कमजोर दिखाई देती है। अतः सनातन धर्म की संस्कृति पर 'रामकथा' और 'रामसेतु', समुद्र पर तैरने वाले 'रामसेतु के उन पत्थरों' की भाँति हैं, जो धार्मिक आस्था से पूर्ण सत्यता की कसौटी पर खरे प्रतीत होते हुए तैरते दिखाई देते हैं और अंतरिक्ष से दिखाई देने वाला 'रामसेतु' साक्ष्य के धरातल पर समुद्र में तैरते 'राम नाम लिखे पत्थरों' के माध्यम से अपने अस्तित्व की सत्यता को दर्शाने का प्रयास करता है।

संदर्भ–सूची :–

1. रामचरितमानस', टीकाकारः हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक एवं मुद्रक, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ.163–180।
2. वही, पृ. 554–557, 603–606।
3. 'वाल्मीकीय रामायण', प्रकाशक, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली, पृ.92–93, पृ.120–128।
4. वही, पृ.251–263, पृ.802–807।
5. वही, पृ.455–459, 495–496, 518–520।
6. 'रामायणमादिकाव्यम्, श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे रामायणमाहात्म्ये–श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाग–1, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–1996 ई०, पृ.1–3, पृ. 5–61, पृ.–87 एवं 95।
7. 'अय्यर, वीवीएस (1950), कंबा रामायणम–चार हजार से अधिक मूल कविताओं के पद्य या काव्य गद्य में अनुवाद के साथ एक अध्ययन, पार्लियामेंट स्ट्रीट, नई दिल्लीः दिल्ली तमिल संगम, 18 जून 2019 को लिया गया।
8. सिकंदर का पाठ और अन्य कहानियाँ, सुरा पुस्तकें। (2006)। पृ.44, आईएसबीएन 978–81–7478–807–8।
9. 'हार्ट, जॉर्ज एलय हेफेट्ज, हैंक (1999), 'युद्ध और ज्ञान के चार सौ गीतः शास्त्रीय तमिल की कविताओं का एक संकलनः पुन्नानुनु, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. पीएस सुंदरम (3.5.2002), कंब रामायण, पेंगुइन बुक्स लिमिटेड। पृ.18, आईएसबीएन 978–93–5118–100–2।।
11. 'असाधारण कवि कंबन पर ध्यान दें, द हिंदू, 23 मई 2010, 8 फरवरी 2018 को लिया गया।
12. Presa, Indiyana (1969). Sarasvati. 70. the University of California. पृ. 417
13. Pattanaik, Devdutt (8 August 2020). "Was Ram born in Ayodhya". Mumbai Mirror
14. सिंह, बी.पी. (2001), गोविन्द चन्द्र पाण्डे, Life, Thought and Culture of India "The Valmiki Ramayana:A Study"। Centre of Studies in Civilizations, नई दिल्ली, आईएसबीएन 81A87586A07A0
15. https://wwwAquoraAcom/What&are&the&salient&differences&between &the&Kamba&Ramayanam&and&Valmiki&Ramayana
16. https://archiveAorg/details/KambaARamayanaAinAHindi
17. इंटरनेट साभार

ഇ★ഗ

राजनीति, शिक्षा, धर्म, धन, शराब एवं स्त्री का अंतर्द्वन्द्व

प्रो. शिवप्रसाद शुक्ल*

समकालीन रचनाशीलता के वैविध्य से आप सब परिचित हैं। भारत दुर्दशा, अंधेरनगरी, सेवासदन, त्यागपत्र, दिव्या, मैला आँचल, चितकोबरा, महाभोज, कितने पाकिस्तान, रागदरबारी, विश्रामपुर का संत, गली आगे मुड़ती है, चित्रलेखा, "सदियों से" की अगली कड़ी डॉ कैलाशनाथ पांडेय का उपन्यास अंतर्द्वन्द्व' है। डॉ पांडेय की 'निष्ठा की मौत, अपनी जमीन देखो, दोगला जैसे उपन्यास, उपन्यासकार जगदीशचंद्र : संवेदना और शिल्प, प्रमुख आंचलिक उपन्यास– संवेदनात्मक दृष्टि, हिन्दी भाषा – विकासात्मक परिदृष्य आदि आलोचनात्मक पुस्तकें पढ़ेंगे तो उनकी साफ़गोई का पता चलेगा। कुलीनता का स्वाँग दलित, सवर्ण एवं अल्पसंख्यक भरते रहते हैँ जिसकी पोल इस्मत चुगताई, प्रेमचंद, सूरज पाल चौहान, प्रभा खेतान, डॉ धर्मवीर, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा एवं मृदुला गर्ग का लेखन खोलता है। फिलहाल अंतर्द्वन्द्व उपन्यास 303 पृष्ठों एवं 25 अध्यायों या उपक्रमों में लिखा गया है। तीन डब्लू (स्त्री, धन, शराब) का बोलबाला शिक्षा, राजनीति एवं धर्म में होने से महाराजा हर्ष वर्द्धन एवं पुलकेशिन द्वितीय के बाद गुलाम बने। फिलहाल स्त्री के आकर्षण एवं विकर्षण से अच्छा बुरा, पाप–पुण्य लोक जीवन में निर्मित होता है। कोई भी देश गुलाम हो स्वाधीन स्त्री की जारकर्म से मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है परन्तु 'अंतर्द्वन्द्व' उपन्यास की कथा महुआपुर के जमींदार निपट निरंजन एवं अपमानी भूमिहार या सवालखी ब्राह्मण जो भी हों से जुड़ी है। वे लोकेषणा, वित्तैषणा एवं पूतेषणा की खोज में भोगेश्वरानन्द की शरण में पहुँचते हैं। भोगेश्वरानंद के नारी निकेतन का अंदाज–ए–बया भौतिक भोग विलास से भरपूर है। भोगेश्वरानंद के अनुसार 'नारी ऐसी पात्र है जो सार्वकालिक रूप से सदैव शुभ तथा पवित्र हुआ करती है। उन्होंने अपमानी को ऐसे ही अपनाया जैसे किसी को गड़ा हुआ खजाना मिल गया हो।"[1] भोगेश्वरानंद की अतृप्त अभिलाषा नारी उत्थान के मारफ़त भोग बनाम सूरज का जन्म राम औतार एवं गुलाबी से किरियात इलाके में हुआ। राम गरीब के मर जाने पर चम्पा को राम औतार ने रख लिया। सूरज साधुओं की संगति में पड़कर भोगेश्वरानंद बने। फिलहाल चम्पा ने बलई से अपमानी को पैदा किया। फिलहाल भोगेश्वरानंद को जब सब पता चला तो अपमानी को निपट निरंजन को सौंप कर जीवन वरदान दिया। अपमानी के बेटों को गोबरा चमाइन ने जेठू लहुरी नाम सुझाया तो पं. गंगानन्द ने गोवर्धन देवराज नाम रखा। फिलहाल भोगेश्वरानंद की अतृप्त इच्छा की पूर्ति अपमानी करती, निपट निरंजन की काफी उम्र के साथ शारीरिक अक्षमता भी जग जाहिर है। मटरू उपाधिया के साथ अन्य लोग भी मस्करी करते। निपट निरंजन की असामयिक मौत होने पर बफाती पठान, मटरू उपाधिया के इशारे पर मुन्सी विसुनाथ स्वामी जी को चिट्ठी लिखें और किशोर खटिक उसे लेकर काशी जाएं। महाबल उपाधिया आदि मिलकर तेरही की तैयारी करें। घुरहू सेठ दान पुण्य का समान खरीदी कर रहे हैं। भोगेश्वरानन्द की बल्ले बल्ले के साथ अपमानी को सलाह दे रहे हैं।

वेश्या इरफानाबाई की बदौलत भोगेश्वरानन्द कोअपार संपत्ति मिली। उनके बाहर जाने पर आश्रम की देख रेख राम अंजोर सिंह करते हैं। नौकरी न मिलने पर लोग साधु बनते हैं। तुलसी के शब्दों में "नारि मुई धन संपाति नासी, मूड मुड़ाई भयऊ संन्यासी "के आधार पर चेतनानन्द अपने दीक्षा गुरु के मठ को कब्जा करने के बाद राम अँजोर सिंह के मारफ़त भोगेश्वरानन्द के आश्रम को अपने कब्जे में लेने की टेढ़ी चाल चलते हैं। चेतनानन्द की शादी काली कलूटी, ठिगनी सुशीला से हुई थी। दर्शन, संस्कृत से एम ए के बाद पीएचडी भी चेतनानन्द ने की थी। चेतनानन्द अपने पिता लालमणि एवं पत्नी सुशीला को बिना बताए साधु बने थे। पाँच वर्ष बाद सुमेर साहु काशी विश्वनाथ में चेतनानन्द से मिलते हैं। उधर राम अँजोर सिंह चेतनानन्द से डील करके आश्रम में यात्रियों को ठहराते हैं। भोलानाथ वकील स्टेम्प पेपर पर मसौदा बनाकर लाते हैं और राम अँजोर सिंह उस पर अँगूठा लगा देता है। उधर महुआपुर में स्वामी भोगेश्वरानन्द के प्रयास

*** प्रोफेसर, हिंदी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।**

से मंदिर एवं विद्यालय का शिलान्यास कर्मकांडी पं. महादेव प्रसाद एवं पटु शिष्य राधा रमण से करवाते हैं। "विद्यालय का भूमि पूजन गोवर्धन के हाथों हुआ। भूमि पूजन में पाँच फावड़े चलाकर विशिष्ट अतिथि राधारमण ने अपना सौहार्द प्रकट किया। विद्यालय का नाम "जमींदार निपट निरंजन विद्यालय होगा।"[2] भोगेश्वरानंद ने गोवर्धन एवं देवराज की शादी कुलवंती एवं गुणवंती सगी चचेरी बहनों से करवाते हैं। चेतनानन्द एवं राम अँजोर सिंह आश्रम की महिलाओं की हेरा फेरी के साथ व्यभिचार को बढ़ावा दिया। चेतनानन्द की अतृप्त इच्छाएं तृप्त होने लगी। गुणवंती एवं कुलवंती के भाई गुणीचन्द– कलानाथ तहसील में चपरासी हो जाते हैं। दोनों के पिता भिक्षाटन करने के लिए सुल्तानपुर की ओर चले जाते हैं। चेतनानन्द कुलीन ब्राह्मण की संतान तो भोगेश्वरानंद धोबी की। दोनों कामुक धन लोभी के साथ लोकतंत्र में भावात्मक शोषण के मारफ़त काम, धन का आस्वाद ले रहे हैं। इसीलिए भोगेश्वरानंद ने नारी निकेतन अधिग्रहण के कारण चेतनानन्द पर पुलिस रिपोर्ट लिखवाई। भारतीय पुलिस का घन चक्कर किसी से छिपा नहीं है। इसी फजीहत को ध्यान में रखते हुए भोगेश्वरानंद ने गोवर्धन एवं देवराज को काशी में अच्छी तालीम दिलाई थी। अब गोवर्धन को बुलाकर आश्रम की जबावदारी सौंपते हैं। गोवर्धन की लंपटता का पूरा लाभ चेतनानन्द उठाता है। भोगेश्वरानंद परेशानियों में फँसते जा रहे हैं। देवराज ने विद्यालय मंदिर, विद्यालय, समाज एवं राजनीति का मोर्चा सँभाल लिया। इसीलिए देवराज गुणवंती की जोड़ी सब की चहेती बन गई। देवराज का मान सम्मान दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। देवराज ब्लॉक प्रमुख के बाद मंत्री बन गए। कुलवंती गोवर्धन से कोई संतान नहीं हुई। तोता,मैना, गोवर्धन एवं चेतनानन्द की लंपटई जगजाहिर है। देवराज भी राजनीतिक लाभ के साथ सभी लाभ लेने लगे। देवराज ऊपर से ईमानदारी का खोल ओढ़े हैं और लोकतंत्र में बट्टा लगा रहे हैं। बुद्धिजीवी, राजनेता, साधु की मिली भगत से धनी एवं औरतें शोषण का शिकार बनती जा रही हैं। देवराज के लग्गू भग्गू भूलेसर, बंशीधर, गंगानन्द, मुल्लाजी, प्रीतम सिंह, नन्हे लाल, चौधरी लठैत सिंह एवं रुद्र प्रताप जैसे लोग लोकतंत्र को दीमक की तरह चाट रहे हैं। "समय की पुकार पार्टी "या कोई और पार्टी हो, सब का एक ही एजेंडा येन केन प्रकारेण स्त्री का भोग एवं हराम खोरी करके रूपए एकत्रित करना। आजाद पार्टी की महामाया का छल प्रपंच जगजाहिर है। देवराज या कोई भी मंत्री कैसे बनता है, सबको मालूम है। महुआपूर गाँव में कन्या विद्यालय एवं महाविद्यालय की नींव पड़ने के पहले नामकरण की जद्दोजहद देखते बन रही है। मंत्री सखाराम एवं देवराज रुतबे के साथ आकर उद्घाटन करके चले जाते हैं। देवराज या देवकीनंदन या कोई भी नेता गाँधी का स्वाँग रचता है। इस पर उपन्यासकार की टिप्पणी ध्यातव्य है "कोयला की दलाली में हाथ काला ही होता है। सरकारी मशीनरी में हेराफेरी रिश्वतखोरी न चले तो उसका हाजमा खराब हो जाता है।"[3]

मनोहर लाल या आज का पढ़ा लिखा किसी के प्रेम में पड़ रहे हैं तभी तो ईसाई लड़की डिसूजा मनोहर लाल का प्रेम परवान पकड़ता है। हालांकि देवराज ने मनोहर को टेक्निकल सहायक एवं डिसूजा को लखनपुर से महुआ पुर की जबावदारी सौंपते हैं। लेखक लखनपुर के बहाने इतिहास का मुआयना बारीकी से कराता है। अधिकारी सुंदरी कुमार का ठाट बाट इश्क किसी से छिपा नहीं है, उनका पति बाहर कुलाचे लगा रहा है तो वे लौंडे या शोहदे पाल रही हैं देवराज के गाँधीपन का लाभ उठा रही हैं। आगरे से आए लौंडों को देवराज से मिलवाती हैं– "सर अप सियासतदान हैं। राजपुरुष सारे नियमों से ऊपर उठा हुआ होता है। लेकिन वह जीवन का आनंद नहीं लूट पाता है। आप खुलकर आनंद लूटिए। भविष्य में कोई एहसान मानने को तैयार नहीं होता।"[4] प्रेमप्रकाश एवं सुशील प्रकाश की मजबूरी का फायदा सुंदरी कुमार के मारफ़त देवराज भी उठा रहे हैं– "यूँ सत्ता की परिधि में आने वाले लड़के नर प्रकृति के दुश्मन बन जाते हैं।"[5] प्रेमप्रकाश एवं सुशील प्रकाश जैसे लोग अपनी आप बीती देवराज जैसे मंत्री को सुनाते रहें, ऐसे लोगों की मजबूरी का लाभ सुंदरी कुमार एवं देवराज जैसे सत्ता भोगी प्राचीन काल से अब तक उठा रहे हैं। अपमानी मइया के दोनों लाल यश अपयश का रुतबा लेकर साँड की तरह दहाड़ रहे हैं। गोवर्धन मल्लाहिन की लड़की सत्ती मैया वकील के प्रेम प्रपंच, भोगेश्वरानंद की सम्मति से मैना से विवाह के बावजूद सत्ती मैया का पुत्र सर्प दंश का शिकार, कुलवंती का पुत्र मानसिक रूप से विकलांग, मात्र मैना का पुत्र स्वस्थ हृष्ट पुष्ट है। सुंदरी कुमार जैसे के पति पहले आज भी विदेश जाते रहें तो उनकी शारीरिक भूख कोई तो शांत

करेगा। भोगेश्वरानंद के निधन के बाद सांसारिक मायामोह के साथ मठ मंदिरों की कदर्थना का पता चलता है। अपमानी मइया ने अतिबल सिंह को स्वामी जी की पहली पुण्य तिथि भली प्रकार सम्पन्न करने की हिदायत देती हैं। जसराजी या जसोदा या सदा विजय आश्रम की कमियों को बताते रहें, अपमानी को सब मालूम है। वकील उमाकांत, वैद्य दीक्षित, सेठ माहेश्वरी, सेठ बाजोरिया, सेठ मालपानी के संवाद लौकिक मठों मंदिरों की पोल खोलते हैं। चेतनानन्द जैसे संतों का मायाजाल जग जाहिर है। सेठ जौहरी, सहजोबाई, राम अँजोर सिंह, गोवर्धन, सत्ती मैया, मैना, कुलवंती आदि मिलकर स्वामी भोगेश्वरानंद आश्रम व्यवस्थापन समिति के अंतर्गत नारी निकेतन संस्था के संचालन का विधान बनाते हैं। तमाम ऊहापोह के बाद भोगेश्वरानंद का उत्तराधिकारी मैना बहन के बेटे तपस्वी को बनाते हैं। उधर सुंदरी कुमार देवराज को घास नहीं डालती है परंतु लिली डिसूजा का समर्पण देखते बन रहा है। पाठक जी एवं सुंदरी कुमार का फोनालाप गाहे बगाहे बहुत कुछ कह जाता है। सुंदरीकुमार के प्रयास से पाठक जी को नशाबंदी घोटाले से बरी करवाती है– "सर !मेरा कहना है कि इतनी विपरीत परिस्थियों में पला बढ़ा, जला–भुना व्यक्ति शायद ही कोई गलती करे जो सामाजिक दृष्टि से स्वीकार हो।... कुछ सोचकर दृआप चाहें तो क्लर्क बुंदेला से भी फ़ाइल जँचवा लें। इसमें पाठक जी के प्रति षड्यन्त्र की गंध आती है। और हो सकता है कि उनकी विवाहिता के बाप ने ही कोई चाल चली हो।"[6] पाठक जी बरी होने पर ब्रीफकेस में कुछ भरकर जाते हैं। देवराज जी का वक्तव्य सुंदरीकुमार के लिए :"प्रिये, आधा क्यों पूरा ले लो।... पता नहीं क्यों सुंदरी तुम्हें देखकर मैं होश खो देता हूँ। तुम विधाता की अनूठी रचना हो। तुम्हारी एकाकी ज़िंदगी में मैं पिघला जा रहा हूँ।"[7]

आर्यावर्त की सीमा दिन–प्रतिदिन संकुचित होती जा रही है। बुद्धिजीवी, राजनेता, धर्म गुरु आदि भली प्रकार जानते हैं परंतु यही लोग लोकतंत्र को खोखला भी कर रहे हैं। सुंदरीकुमार जैसे अधिकारी एवं देवराज जैसे मंत्री की मिलीभगत का शिकार लोकतंत्र हो गया है। "पाठक जी एक वेदपाठी ब्राह्मण के घर पैदा हुए और सुंदरीकुमार की पैदाइश सिंध प्रांत के पंजाबी परिवार में हुई है। देश विभाजन के बाद सुंदरीकुमार का परिवार हिंदुस्तान आ गया। जैसा कि लोगों की धारणा है कि मुगलों से सताये हुए सिन्धी –पंजाबी पर सहज विश्वास करना जोखिम भरा कदम है।"[8] सुंदरीकुमार की कूटनीति कहीं न कहीं अपने लोगों को स्थापित करना है। इसीलिए मनोहर लाल, गंगानन्द एवं भूलेसर जैसे लोग निराश होकर गाँव लौटना चाहते हैं। गंगानन्द एवं भूलेसर तरह –तरह की कहानियाँ किसी के बारे में सुनाते हैं, वे चाहे पंडित जी हों या कोई और की बेटी को पाले लड़के ही भगा ले गए। पंडिताइन को फॉलिश मार गया। उन्होंने दिव्यान्ग पुत्र को कुएं में डाल दिया, वे अपने कर्मों का भोग भोग रहे हैं। सुंदरीकुमार कहीं न कहीं देवराज या देवकीनंदन या काका चौधरी के लोगों को दूर करके अपने लोगों को अच्छी जगहों में बिठा कर कोई भी चुन कर आए जिससे सत्ता की पकड़ उनके हाथ में रहे। गुणवंती के दोनों बेटे नरोत्तम एवं पुरुषोत्तम उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर दिखाई दे रहे हैं। अपमानी मइया भोगेश्वरानन्द के दिवंगत होने पर चेतनानन्द के शरण में बुढ़ौती काटते हुए महुआपुर आ गई हैं। मनोहर लाल चापलूसी के साथ नरोत्तम –पुरुषोत्तम का नाम इलाहाबाद विश्वविद्यालय में स्वामी चेतनानन्द के परिचित गणित के प्रो रामपाल के माध्यम से कराते हैं। फिलहाल लेखक का वक्तव्य "सुंदरीकुमार जोंक है जो देह से चिपककर रक्त पिया करती है। सुंदरीकुमार चिलर हैं जो कपड़े में भी छिपकर अपना आहार खोज लेती हैं। सुंदरीकुमार छद्मरूपा हैं जो स्थिति विशेष के अनुसार आचरण करती हैं।– वे अपने निजी जीवन में भौतिक लालसाओं की सताई हुई हैं।"[9] गंगानन्द पंडित कहीं न कहीं सुंदरीकुमार की कमजोर नब्ज पर अँगुली रखते हैं। वे पाठक की जगह प्रेमप्रकाश के साथ सुंदरीकुमार को रहने की सलाह देते हैं। पाठक एवं सुंदरीकुमार की रासलीला से युक्त संवाद कहीं न कहीं समसामयिक अफरा – तफरी के साथ हर प्रकार के मूल्यों के क्षरण के द्योतक हैं। संयुक्त प्रांत के मुखिया पर हीरेन पण्ड्या या गोविंदाचार्य जैसी गाज गिरी। पाठक एवं सुंदरी की प्रेमकथा महामाया के दरबार में चर्चास्पद बनी। महामाया की कलाबाजी जगजाहिर है। महामाया के दोनों पुत्र कुलबोरन और कुलनशावन राजकाज से दूर रहते थे। इसीलिए अपने तीसरे बेटे धुँधकारी को युवराज बना दिया : "तानाशाह बाप की बेटी ने छल प्रपंच करके सियासत की कुर्सी पर बैठ जाती है। अपने विकृत अहं में सोचा

था पूरे एशिया की कायदे आजम बन जाऊँ। दूसरों की संप्रभुता का अनादर करके पड़ोसी देशों को अस्थिर कर दिया।"[10] राजनीतिक शुचिता के गायब होने से सब जगह अफरा –तफरी है। समाचार पत्र के संपादक चितरंजन शास्त्री कुछ भी टिप्पणी करें क्योंकि पत्रकारों पर कोई विश्वास नहीं करता है। 1947 से लेकर अब तक के चुनावों का काला चिट्ठा किसी से छिपा नहीं है। महामाया जैसे उद्दंड अधिनायकवादी देश को पीछे करते चले गए। देवराज एवं देवकी नंदन भी महामाया का साथ छोड़कर गाँव जा रहे हैं। गगन दीप एवं महामाया के संवाद 1947 से लेकर अब तक की राजनीति का पर्दाफ़ास करते हैं। "मैं तो कहती हूँ कि जनतंत्र का सही नाम भेड़तंत्र होना चाहिए जो चलती हुई भेड़ों के पीछे कतार लगाकर भागती रहती है।"[11] महामाया अपने साक्षात्कार में भारतीय जनतंत्र पर नाना प्रकार के आरोप प्रत्यारोप लगाती हैं। "इस देश में या तो जातिवाद, फिरकापरस्त राजनीतिक दल हुकूमत करेंगे अथवा शुद्ध खानदानी घरानों की पार्टियों के हाथ में हुकूमत की बागडोर रहेगी।...कुछ सोचकर...लेकिन भारी खतरा अल्पसंख्यकों से है। इनकी देश के प्रति कोई निष्ठा नहीं रह गई है।"[12] यों देखा जाय तो भारतीय लोकतंत्र धनी, सवर्ण, दलित, गरीब, एवं अल्पसंख्यक की आँख मिचौनी की तरह चल रहा है। महामाया कहीं न कहीं देवकी नंदन एवं देवराज आदि के लिए चुनाव प्रचार करके सत्ता में आना चाहती हैं तो तूफ़ानी मिश्र समाजवादी पार्टी का झण्डा लहरा रहे हैं। "सनातन आजाद पार्टी"के बलराज उर्फ बल्लर पाड़े का चुनावी वक्तव्य काफी दमदार है। "मसीहा क्रांति दल "के काका चौधरी का आलाप महामाया को सत्ता से दूर करना है। "रईश पार्टी" के राजेश्वरी सिंह का भी एजेंडा महामाया को दूर करके सत्ता में आना है। "स्वाधीन भारत में जनतंत्र की जगह भीड़तन्त्र और गुंडातंत्र ने ले लिया है।"[13] गँठजोड़ की सरकार के प्रधानमंत्री चकवर्ती सिंह जी बने। देवराज को भी मंत्रालय में सम्मिलित किया गया। काका चौधरी वक्तव्य देते समय देवराज एवं देवकीनंदन की तारीफ करते हुए उनके दल बदलू स्वभाव की पोल खोलते हैं। पूर्व विधायक जितई राम पाड़े और कालीराम चौधरी भी अपने चुनावी माहौल बनाते हैं। उधर नरोत्तम –पुरुषोत्तम का पंदरहवाँ जन्म दिन धूमधाम से मनाने के लिए अपमानी मइया, चेतनानन्द, गोवर्धन, कुलवंती तथा मैना आदि आए हुए शिरकत की। महाबल उपाधिया, महादेव, मुदमंगल सिंह, चक्रवर्ती सिंह के संवाद काफी समीचीन एवं सारगर्भित हैं। काका चौधरी गठबंधन के मुख्यमंत्री बन गए परंतु वस्तु स्थिति का आकलन करते हुए सुंदरीकुमार एवं देवराज की गिरफ्त में आ गए। "यदि सरकार बीच में लुढ़क गई तो अगले चुनाव के लिए तैयारी होनी चाहिए। इसलिए पार्टी फंड का भंडार भरा रहना चाहिए।। चुनावी अखाड़े में तो पैसे का खेल चलता है।"[14] सुंदरीकुमार जैसी अधिकारी हर युग में किसी भी व्यवस्था को घुन या दीमक की तरह चाट जाती हैं। काका चौधरी या देवराज या देवकीनंदन या तथाकथित नेता सुंदरीकुमार के आगे पीछे घूमते रहते हैं : "सर, काका का इशारा तो दूर मैं उनके पेट की बात भी समझती हूँ। ... काका की पीड़ा है कि स्वाधीन देश भी बचा रहे और जनता भी खुश रहे। पार्टी को भी न बनना पड़े तथा प्रदेश में बेरोजगारी भी न फैले।"[15] सुंदरीकुमार, गंगानन्द, देवराज, लिली एवं भूलेसर के संवाद काफी जीवंत एवं समसामयिक राजनीति का भंडाफोड़ करते हैं : "नारी जाति की बड़ी कमजोरी उसकी रूप प्रशंसा है।... गंभीर होकर... हम सभी को अपने–अपने ढंग से सुंदरी को रिझाना चाहिए।"[16] यों देखा जाय तो शिक्षा, राजनीति एवं धर्म कहीं न कहीं बाजार की गिरफ्त में आ गए हैं। चक्रवर्ती, चौकीदार, पाठक भँगेड़ी सुकुल, बच्चा पाड़े, सुखदेव, अर्दली, अतिबल, अपमानी, सेठ बाजोरिया, सेठ माहेश्वरी, वकील उमाकांत, सेठ जौहरी, गुणवंती, राम फकीर, खेलावन, देखूहार, पारसनाथ, सिद्धार्थ के संवाद धन, शराब, औरत को राजनीति, धर्म एवं शिक्षा में अपने अपने तरीके से इस्तेमाल करते हैं। अपमानी मइया की कुलीनता जगजाहिर है, वे सिद्धार्थ तथा हरिओम से एक–एक हजार रूपए विदाई लेती हैं। नरोत्तम –पुरुषोत्तम की अच्छी शिक्षा के बाद विवाह और नौकरी पक्की हो गई तो वकील, वैद्य जी महंत दंडी स्वामी के शिष्य पाठक केदारानंद को चेतनानन्द के साथ जबावदारी सौंपते हैं। चेतनानन्द अपनी वेदना सुना रहे हैं, और आश्रम में अप्रत्याशित घटनाएं घटित हो रही हैं। शिक्षा, राजनीति एवं धर्म का गँठजोड़ सभी मूल्यों को ध्वस्त करता जा रहा है। सुंदरी कुमार जैसी अधिकारी यौवन शोषण अपने स्वार्थ के लिए करवा रही है। देवराज के दोनों बेटों का विवाह धूमधाम से हुआ, गोवर्धन की दर्दनाक मौत, नरोत्तम–पुरुषोत्तम का चयन पी.सी.एस. में हुआ। दुःख एवं सुख का भोग सभी कर रहे हैं, अपमानी की खुशी एवं गम हृदय में हिलोरे मार रहा है। एक हाथ में पाप तो दूसरे में पुण्य कहीं न कहीं सुंदरीकुमार को मिलेगा। इस उपन्यास के पात्र –संवाद घटनाएं

समसामयिक स्त्री, साधु, गृहस्थ, समाज, परिवार, पुरुष, देश की आंतरिक एवं बाह्य विसंगतियों से बिम्बित भाषा में रूबरू कराते हैं। सहज, देशज, कहीं कहीं ग्रामीण भाषा समकालीन विसंगति को भली प्रकार उभारती है। लेखक का नीर–क्षीर लेखन सच्चे सहृदय को अच्छा लगेगा तथा कुटिल सहृदय को आशाराम, नरेंद्र गिरि, नीरव मोदी, सुनंदा पुष्कर, बृज भूषण शरण, अतीक आदि की राह भी दिखाएगा। डॉ पांडेय की रचनाशीलता से नागनाथ एवं साँपनाथ श्रेय एवं प्रेय की तरह सांसारिक लीलाएं करते रहेंगे। सांसारिक छल–प्रपंच के नए महाभारत को डॉ पांडेय ने नई शैली में लिखकर सहृदय को सचेत कर रहे हैं। सार्थक लेखन कहीं न कहीं बदलते परिवेश में मानसिक बुनावट को कथा के माध्यम से "बुड़हि सकल समाज "की याद दिलाता है। राजनीति, शिक्षा एवं धर्म दुधारू गाय की तरह व्यवसाय बन गए। राम या कृष्ण इस विसंगति को दूर कर सकते हैं। नरोत्तम एवं पुरुषोत्तम भी सुंदरीकुमार की तरह लोगों को चकमा देंगे। फिलहाल श्रेय–प्रेय या पाप–पुण्य का अंतर्द्वन्द्व चलता रहेगा।

संदर्भ–सूची :–

1. कैलाश नाथ पांडेय : अंतर्द्वंद्व : पृष्ठ –12, अयन प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण –2022
2. वही, पृष्ठ–34।
3. वही, पृष्ठ–193।
4. वही, पृष्ठ–201।
5. वही, पृष्ठ– 203।
6. वही, पृष्ठ– 218।
7. वही, पृष्ठ–220।
8. वही, पृष्ठ–221।
9. वही, पृष्ठ–230।
10. वही, पृष्ठ –235।
11. वही, पृष्ठ –240।
12. वही, पृष्ठ – 241।
13. वही, पृष्ठ –248।
14. वही, पृष्ठ – 261।
15. वही, पृष्ठ –262।
16. वही, पृष्ठ–266।

मृत्युंजय
(स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष-शहादत तथा मानवीय संवेदना के संस्पर्श की एक असमिया महागाथा)

प्रो. हसमुख परमार*

ब्रिटिश सत्ता के शिकंजे से अपने देश को मुक्त कराने हेतु भारतीयों के ओज–उत्साह, साहस–संघर्ष व शौर्य–शहादत से सराबोर स्वतंत्रता संग्राम, आधुनिक भारतीय इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय में या कहिए आज़ादी के इस महासंग्राम की दीर्घावधि में, विशेषतः बीसवीं शताब्दी में हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, लाला लजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, डॉ.अबुल कलाम आजाद, भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, सरदार वल्लभभाई पटेल, पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ.राम मनोहर लोहिया, सरोजिनी नायडू प्रभृति भारतमाता के सपूतों एवं अनेकों सबलाओं ने देश में आजादी की एक तेज लहर को जन्म देकर उसे बुलंद किया, पूरे देश में प्रवाहित किया, जिसके चलते भारत की कोटि कोटि जनता आजादी के पथ पर उतर आई। हम यह भी देखते हैं कि स्वाधीनता आंदोलन का बडी कुशलता व साहस के साथ नेतृत्व करने वाले सभी नेताओं तथा उनके साथ जुडे असंख्य स्वातंत्र्य सेनानियों का लक्ष्य तो एक ही था– अंग्रेजों की गुलामी से भारत और भारतवासियों की आजादी। परंतु उनके रास्ते या कहिए आजादी की लड़ाई के हथियार कहीं कहीं दो तरह के। मतलब– 'अहिंसा परमो धर्मः' तो कहीं 'धर्म हिंसा तथैव चः', दोनों धाराएँ उस दरमियान समानांतर बह रही थीं। "महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह तथा असहयोग के आंदोलन चलाए। अहिंसा उनका हथियार था। सत्य उनकी शक्ति; तो दूसरी तरफ़ भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारी देशभक्त थे जो हिंसा द्वारा भी आजादी लाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दिए जा रहे थे।" और इसी तरह इन उभय के मिले–जुले प्रयास से अंततः हमें आजादी मिली।

आज़ादी का यह ताज
बड़े तप से भारत ने पाया है,
मत पूछो इसके लिए
देश ने क्या कुछ नहीं गँवाया है। –दिनकर

स्वातंत्र्य संग्राम में भारतीय साहित्य की भी एक बड़ी व महती भूमिका रही। दरअसल आज़ादी की इस लड़ाई के दौरान भारतीय साहित्य, दर्पण और दीपक उभय रूपों में अपने दायित्व का बराबर निर्वाह कर रहा था। यहाँ दर्पण इस अर्थ में कि स्वाधीनता संग्राम का यथातथ्य चित्रण और दीपक से आशय है इस संग्राम की दिशा तथा उसके महत् उद्देश्य को अच्छी तरह से स्पष्ट करते हुए आजादी हेतु भारतीय जनता में एक जोश–जागरण व उत्साह–ऊर्जा का संचार करते हुए अपने देशप्रेम तथा राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने के संदर्भ में। और महत्त्व की बात तो यह है कि स्वाधीनता के दौर में ही नहीं बल्कि स्वाधीनता के बाद आज तक के साहित्य सृजन–लेखन में इस आंदोलन की उपस्थिति उतने ही ओज–उत्साह व संजिदगी से रेखांकित होती रही है– प्रासंगिकता व उपयोगिता के संदर्भ में तो कहीं स्मरण के संदर्भ में।

ऊपर प्रथम पैराग्राफ में हम यह बता चुके हैं कि पूरे भारत में, राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय रहे स्वातंत्र्य संग्राम में सत्याग्रह, असहयोग और अहिंसा के साथ साथ कहीं कहीं क्रांति और हिंसात्मक संघर्ष के जरिए भी यह लड़ाई चलती रही। क्रांति–हिंसात्मक संघर्ष विशेषतः सुभाषचंद्र बोस के 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी....' के मंत्र को अपनाते हुए, लोहिया की 'अहिंसा से नहीं, क्रांति से देश आजाद होगा' की आवाज़ में आवाज़ मिलाते हुए, 'करेंगे या मरेंगे' के संकल्प के साथ अग्रसर रहा। इसी राह और दिशा में छापामार युद्ध, खून का बदला खून, पुल तोड़ने, रास्ते–घाट बेकार बनाना, रेलगाडी उलटनी, अंग्रेजों को तथा उनके संसाधनों – संपत्ति व योजनाओं को नुकशान पहुँचाना जैसी गतिविधियाँ भी खूब होती रहीं। इस आलेख में आगे हम असमिया उपन्यासकार वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य के जिस 'मृत्युंजय' उपन्यास की चर्चा कर रहे हैं उसकी संवेदना व कथा मूलतः क्रांति व हिंसात्मक संघर्ष वाली धारा से जुड़ी है।

असमिया कथासाहित्य के एक शीर्षस्थ लेखक के रूप में वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय रहा है। इसी विषय क्षेत्र में अपने स्तरीय लेखकीय योगदान के एवज़ में यह कथालेखक

*** स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर (गुजरात)**

ज्ञानपीठ और साहित्य अकादमी के पुरस्कार से सम्मानित हो चुके हैं। वैसे कहानी और उपन्यास उनके लेखन का प्रमुख क्षेत्र रहा है, साथ ही काव्य सृजन के प्रति भी इनकी अच्छी ख़ासी रूचि रही है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी 'रामधेनु' जैसी पत्रिका का सम्पादन करते हुए उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता को विकसित करने में भी अपनी महती भूमिका का बखूबी निर्वाह किया है। आई (1960), इमारू इंगल (1960), शतध्नी (1968), प्रतिपद (1970), मृत्युंजय (1970) जैसी औपन्यासिक रचनाओं के कारण वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का नाम सिर्फ असम के असमिया साहित्य में ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य में भी एक समर्थ बतौर कथालेखक वे बहुत ख्यात रहे हैं। 1979–80 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत 'मृत्युंजय' (1970) उपन्यास की कथावस्तु स्वाधीनता संग्राम के 'भारत छोडो' आंदोलन की असम प्रांत की एक घटना से जुड़ी है। वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य के इस असमिया उपन्यास का हिन्दी रूपांतर डॉ.कृष्णप्रसाद सिंह 'मागध' ने किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथा वैसे तो असम के एक छोटे से भूभाग, बहुत सीमित समय विस्तार, गिने चुने प्रमुख पात्रों तथा एक मुख्य घटना को लेकर विकसित हुई है, फिर भी लेखकीय कुशलता का ही परिणाम है कि इसमें देशभक्ति व स्वाधीनता आंदोलन, मानवीय प्रेम व संवेदना तथा असम जीवन की विविध रंगी छवि बखूबी उजागर है। दरअसल उपन्यास में वर्णित घटना जिसके घटित होने के लगभग ढाई–तीन दशक के बाद यह उपन्यास लिखा गया, फिर भी घटना की जीवंतता, उसके जोश–जज्बे का बराबर बने रहना घटना विशेषता के साथ उसके प्रस्तुति तथा आलेखन कौशल को भी दर्शाता है। उपन्यास के आमुख में लेखक लिखते हैं– "मृत्युंजय की कथावस्तु है 1942 का विद्रोह : 'भारत छोडो' आंदोलन का असम क्षेत्रीय घटना चित्र और इसके विभिन्न अंगों के साथ जुडा–बंधा वह सब जो रचना को प्राणवत्ता देता है। ..... कथा आधारित है वहाँ की सामान्यतम जनता के उस विद्रोह की लपटों को अपने से लिपटा लेने पर और कैसा भी उद्‌गार मुँह से निकाले बिना प्राण होम कर उसे सफल बनाने पर। घटना के 26 वर्ष बाद यह उपन्यास मैंने लिखा। उस समय की वह आग ठण्डी पड चुकी थी पर उसकी आत्मा, उसका यथार्थ अब भी साँसें ले रहे थे।"

जिस घटना का उपन्यास में बहुत विस्तार व गंभीरता के साथ आलेखन हुआ है वह घटना है– 1942 के स्वातंत्र्य संघर्ष के घटनाक्रम के अंतर्गत असम प्रांत के कामपुर क्षेत्र के एक जंगल में से गुज़र रही रेल–पटरियों को उखाडकर अंग्रेज सरकार के सैन्य, शस्त्र व राशन को लेकर आने वाली रेलगाडी को उलटकर अंग्रेज सरकार को नुकशान पहुँचाने की योजना। और इस योजना को सफल बनाने के लिए कुछेक देशप्रेमियों, स्वातंत्र्य सेनानियों की अपने प्राणों की आहुति देने की तैयारी व जज्बा। दरअसल उपन्यास की कथा मूलतः स्वातंत्र्य संग्राम की हिंसक क्रांति की संवेदना व तत्संबंधी संदर्भों से ही जुडी है, तथापि इसके साथ–साथ क्रांतिकारियों के अंतर्मन का द्वंद्व व संघर्ष, मानवीय स्वभाव–संवेदना के विविध पहलू तथा नारी मन की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति भी इस उपन्यास को तथा इसकी कथा को मार्मिकता का संस्पर्श देती है। क्रांति, संघर्ष, द्वंद्व, साहस, शहादत तथा मानवीय वेदना–संवेदना की यह कथा महदानंद गोसाई, धनपुर, रूपनारायण, डिमि, सुभद्रा, गोसाइनी प्रभृति पात्रों की गतिविधियों से विकसित होते हुए अंतिम पड़ाव तक पहुँचती है।

किसी एक प्रांत–प्रदेश से ही नहीं बल्कि पूरे भारत के एक बड़े मंच से एक ही आवाज उठ रही थी और गूँज रही थी– ' भारत छोडो'। अहिंसा के हथियार से आजादी की लडाई लड रहे, और इस आंदोलन की अगुआई कर रहे महात्मा गाँधी जैसे बडे नेताओं को अंग्रेज सरकार ने कारागार में बंद कर दिया। अब जनता की चिंता का कारण था कि उनका मार्गदर्शन कौन करें। ऐसी स्थिति में अनेकों युवाओं का हौसला बुलंदी पर था जो सिर पर कफन बाँधे भारतमाता की मुक्ति के संग्राम में कूद पड़े। इनके लिए अपनी व्यक्तिगत चिंताओं , निजीप्रेम व परिवार से भी ऊपर है देश की आजादी और यह सिर्फ अहिंसा के हथियार से हासिल नहीं होगी। विवेच्य उपन्यास में हम देखते हैं कि मायंग के महदानंद गोसाई अपने साथ धनपुर और रूपनारायण जैसे युवाओं को साथ लेकर इसी दिशा में एक योजना बनाते हैं।

अंग्रेजों को जितनी बाधा पहुँचा सकते हैं, पहुँचानी चाहिए। सैनिकों को ढोकर ले जाती ट्रेन उलटना बहुत जरूरी है। कामपुर के गोसाई ने पत्र में रेल उलटाने की जगह का विवरण दिया है। वह जगह दो पहाड़ों के बीच का एक छोटा सा रास्ता है, यहाँ ट्रेन उलटने पर ट्रेन के डिब्बे छिटक कर इधर–उधर लुढ़क जाएँगे। और तब बहुत दिनों तक सैनिकों को रसद की आमद बंद हो जाएगी। फिर निर्णय हुआ कि कुल तीन दलों में विभक्त हो ये लोग कुमारकुचि आश्रम की ओर जाएँ जहाँ ट्रेन उलटनी है। रेल लाइन पर कड़ा पहरा होगा। पहरेदारों की बदली के वक्त ही फिसप्लेट खोलनी होगी। धनपुर यह काम करेगा। पंद्रह मिनट में यह काम हो जाएगा। बीस–पचीस मिनट में भी काम खत्म हो सकता है। पर आधा घंटा नहीं लगना

चाहिए। अन्यथा पहरेदारों के हाथों में पड़ने का डर है। पहरेदारों के हाथों पड़ने से सीधे फाँसी के तख्ते पर चढ़ना होगा। (भारतीय उपन्यासः कथासार, सं. प्रभाकर माचवे, पृ–282 से उद्धृत)

ट्रेन उलटाने की जिम्मेदारी गोसाई, धनपुर और रूपनारायण की। इसमें भी धनपुर की एक तरह से मुख्य भूमिका। धनपुर का डिमि और सुभद्रा नामक दो युवतियों के प्रति प्रेमाकर्षण। डिमि के प्रति पहले से वो आकर्षित था जबकि सुभद्रा जो दस–दस नराधमों की पाशविक वासना का शिकार हुई और इसकी इस दयनिय स्थिति को देखकर धनपुर उसे अपनाने का निर्णय करता है। परंतु अपने इस निजी प्रेमभाव से पहले है देशप्रेम ! अतः फिलहाल धनपुर के लिए डिमि नहीं, सुभद्रा नहीं। सिर्फ़ देश। 'आजादी' का मिशन पहले। बाकी सब बादमें।

अंग्रेज सरकार की ट्रेन गिराने के मिशन में धनपुर के साथ मृत्युसेना के स्वयंसेवक हैं तथा भिभिराम, माणिक बरा, आहिन कोंवर, रूपनारायण और दैपारा वैष्णव सत्र के गोसाई हैं। अपने मिशन को पूरा करने के लिए यह टीम पहले से ही पूरी जानकारी प्राप्त कर लेती है, ट्रेन के आने को लेकर तथा उसकी पहरेदारी आदि को लेकर। यहाँ एक बात उल्लेखनीय यह भी है कि क्रांति और हिंसा के मार्ग पर चल पडी इस टोली में गोसाई जैसे पात्र जिनमें अहिंसा के आदर्श को लेकर एक द्वंद्व की स्थिति तथा इस आदर्श को लेकर चलते रहने के बाद हिंसा की ओर कैसे मुड़ गए, इसका संकेत भी है। " अहिंसा के पथ पर चलते–चलते हिंसा की ओर मोड ले लिया। हिंसा के नज़दीक संपूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दिया। " और भी कई पात्रों में इस तरह के द्वंद्व व ऊहापोह की स्थिति देखने को मिलती है। उपन्यास के आमुख में स्वयं लेखक भी लिखते हैं कि दृ " सबसे बडी समस्या उस भोले जनसमाज के आगे यह भी थी कि गाँधीजी के अहिंसावादी मार्ग से हटकर हिंसा की नीति को कैसे अपनाएँ, और सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि इतनी इतनी हिंसा और रक्तपात के बाद का मानव क्या यथार्थ मानव होगा। वह प्रश्न शायद आज भी ज्यों का त्यों जहाँ का तहाँ खड़ा है।"

रेल की पटरी के नट–बोल्ट और फिस–प्लेट खोलते समय धनपुर को पहरेदार की बंदूक से निकली गोली पैर में लगती है। गोसाई और रूपनारायण दोनों अपनी बंदूकों से पहरेदारों का सामना करते हैं। जहाँ रेल पटरी की फिस–प्लेट खोल दी थी वहाँ ट्रेन पहुँचती है और उसके डिब्बे एक दूसरे से टकराते हुए भयानक गति से लुढ़कने लगे। ट्रेन के डिब्बों के प्रचंड गति से नीचे गिरने के साथ उससे भी विकट प्रचंड आदमियों की चीखें सुनाई देती हैं।

रेलगाडी का उलटना। और इसके साथ ही दर्दनाक चीखें, खून यानी हिंसा के मार्ग को अपनाने के बाद का यह परिणाम। परंतु 'अहिंसा परमो धर्म' या मनुष्य की मनुष्यता या इतनी हिंसा के बाद का मनुष्य का प्रश्न इस दुर्घटना के बाद, इससे जुड़े मतलब ट्रेन गिराने वालों के मन में और ज्यादा गंभीरता से उठता–टकराता रहता है, कहीं आंतरिक संघर्ष, पछतावा तो कहीं विवशता की वजह के बहाने। " गोसाई के दोनों हाथों में तब भी आदमी का ताजा खून लगा हुआ था। उस खून के दाग का स्पर्श वे सहन नहीं कर वे बोले, बिना आदमी मारे यदि लड सकता तो कितना सुन्दर होता। पर वैसा उन्होंने नहीं होने दिया। महात्मा बाहर होते तो शायद ऐसी लडाई नहीं होती। "रूपनारायण की स्थिति भी कुछ इस तरह की है। " इस दुर्घटना का दृश्य देख उसका मन मुरझा गया है। हृदय मजबूत कर, रूपनारायण ने अपने आपसे कहा– यह शुरुआत है। इसके बाद आरोहण है, अवरोहण है, समाप्ति है।"

रेलगाडी के उलटने के बाद की हिंसक लडाई में गोसाई तथा दो और युवाओं की मृत्यु होती है तो वहीं धनपुर भी मरणासन्न है। इस तरह अपने देशप्रेम के निमित्त मृत्यु की परवाह किए बगैर धनपुर और गोसाई जैसे चरित्र सही अर्थ में मृत्युंजय बनते हैं। मरने से पहले धनपुर, डिमि से एक बार मिलना चाहता है। धनपुर की अंतिम विदाई का बडा करुण दृश्य लेखक ने अंकित किया है। असल में देशप्रेम के साथ साथ मानवप्रेम का निरुपण भी उपन्यास में है। धनपुर, डिमि, सुभद्रा, गोसाई, गोसाइनी आदि पात्र जिनके जीवन में स्त्री–पुरूष का परस्पर प्रेमभाव और इसी प्रेमभाव में व्यथा–वेदना का भी गाढ़ा संस्पर्श।

"धनपुर मरते वक्त डिमि को देखना चाहता है। एक बार डिमि का मुखडा सामने हो और वह शेष निश्वास त्याग करें, अब बस यही एक आखिरी अभिलाषा है। दौडती हुई व्यग्र, बेहाल डिमि वहाँ आई। 'मेरे धन, मेरे प्राण' कहते हुए उसने धनपुर का मुँह उठाकर एक बार चूम उसे आलिंगन में बाँध लिया।' और थोडी देर राह क्यों नहीं देखी मेरे प्राण?' काफ़ी देर बाद अचानक एक बार धनपुर ने आँखें खोल दीं। डिमि ने बड़ी आशा से पुकारा 'प्राण। मेरे प्राण !' (भारतीय उपन्यासः कथासार, सं. डॉ.प्रभाकर माचवे, पृ–289)

सभ्यताओं के विकास-ह्रास का भाषा से है- 'अटूट संबंध'

डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य'*

यह तो हम जानते हैं कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। लेकिन भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है। भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते–समझते हैं और अपने ज्ञान–विज्ञान, वाणिज्य–व्यापार, साहित्य–कला, गीत–संगीत आदि को अभिव्यक्त व संप्रेषित करते हैं। अभिव्यक्ति के साथ–साथ भाषा हमारे चिंतन, मनन और विचार का माध्यम भी है। मानवदृसभ्यता–संस्कृति के विकास के साथ–साथ भाषा का भी विकास होता जाता है। भाषा और ज्ञान–विज्ञान, वाणिज्य–व्यापार, साहित्य–कला, गीत–संगीत आदि का परस्पर अटूट संबंध है, भाषा बढ़ती है तो सभ्यता भी विकसित होती है। सभ्यता विकसित होती है तो भाषा भी समृद्ध होती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए उसे सदैव ही एक–दूसरे से विचार–विनिमय करना पड़ता रहा है। कभी सिर हिला कर, चेहरे के हाव–भाव या कोई आवाज निकाल कर काम चलता था, इसके अतिरिक्त अल्पशिक्षित समाज में हल्दी, सुपारी, इलायची या रोटी बांटने आदि के माध्यम से भी संदेशों का आदान–प्रदान होता था। फिर मानव–विकास प्रक्रिया के साथ शब्दों, वाक्याशों और वाक्यों के साथ भाषा भी विकसित होती गई। भाषा के साथ–साथ लिपि का भी विकास होने लगा और संदेश के लिए पत्र और निमंत्रण पत्र भी प्रचलित होने लगे।

भाषा के माध्यम से ही हम ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में शैली–शब्दावली आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में चिंतन–मनन और विचार करते हुए विकास करते हैं। इस प्रकार भाषा ही साहित्य, गीत–संगीत, व्यापार–वाणिज्य तथा ज्ञान–विज्ञान का माध्यम है। भाषा से ही इनका विकास है। यदि भाषा की क्षमता पर्याप्त नहीं होगी तो उसके माध्यम से चिंतन–मनन और ज्ञान–विज्ञान आदि विभिन्न अवधारणाओं के विकास में आगे बढ़ना संभव नहीं है। चिंतन–मनन और नवीन विचारों के साथ भाषा का और भाषा के साथ ज्ञान–विज्ञान का विकास होता है। यदि हमें विश्व की किसी सभ्यता के विकास के स्तर को समझना हो तो उसकी एक सरल विधि यह भी है कि हम तत्कालीन भाषा के विकास का अध्ययन कर लें। यदि हम इतिहास के विभिन्न कालखंडों में ज्ञान–विज्ञान, साहित्य–संगीत तथा व्यापार–वाणिज्य के स्वर्णिम अध्यायों को देखते हैं तो वहाँ हमें व्यापार–वाणिज्य, ज्ञान–विज्ञान, तथा कला–साहित्य तथा भाषा का भी उसी स्तर का विकास दिखाई देता है। इसलिए यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि भाषा विकास का माध्यम ही नहीं भाषा किसी क्षेत्र में, किसी कालखंड में विकास की द्योतक भी है।

गुप्त काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है। गुप्तवंश के शासनकाल में भारतीय सभ्यता व संस्कृति का सूर्य अपने चरम पर था। इसीमें जहाँ एक ओर वैज्ञानिक व गणितज्ञ आर्यभट्ट थे, जिन्होंने एक ओर पृथ्वी की त्रिज्या की गणना करते हुए भूगोल के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित किए, वहीं दूसरी ओर ब्रह्मांड में सूर्य को केंद्र का आधार बताते हुए एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन भी किया। उन्हीं के समकक्ष वराहमिरी ने चंद्र कैलेंडर शुरू करके समाज को एक नया रूप दिया। गुप्तकाल में ही अधिकांश पुराणों का संकलन हुआ। गुप्त काल में संस्कृत भाषा और साहित्य का अप्रतिम विकास हुआ। इसी काल में संस्कृत भाषा के इस युग के महान् कवियों और साहित्यकारों ने अपनी अनेक कालजयी रचनाओं का प्रणयन किया। लौकिक साहित्य के अन्तर्गत विशाखदत्तकृत 'देवीचन्द्रगुप्तम्' (नाटक) अन्य साहित्यिक स्रोतों में– अभिज्ञान शाकुंतलम, रघुवंश–महाकाव्य, मुद्राराक्षस, मृछकटिकम्, हर्षचरित, वात्सायनन के कामसूत्र आदि कालजयी ग्रन्थों के प्रणेता भी आविर्भूत हुए। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कोई सभ्यता विकसित होती है तो सभी क्षेत्रों में उसका विकास होता है। ललित साहित्य हो या वैज्ञानिक साहित्य दोनों के लिए आवश्यक है उत्कृष्ट भाषा का विकास।

गुप्त काल की शासकीय भाषा संस्कृत थी जो कि एक वैज्ञानिक एवं परिष्कृत भाषाथी, अर्थात राजकाज, ज्ञान–विज्ञान, अनसंधान आदि की भाषा संस्कृत थी। साथ ही उस काल में प्राकृत का भी प्रचलन

**भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के पश्चिम क्षेत्र (गुजरात, महाराष्ट्र, गोआ, कर्नाटक राज्यों तथा संघ शासित प्रदेश दमण एवं दीव तथा दादरा नगर हवेली) के सेवानिवृत्त उपनिदेशक हैं। डॉ. गुप्ता 'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' के संस्थापक व निदेशक हैं।*

हो चला था। संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन भाषा मानी जाती है। संस्कृत एक हिंद–आर्य भाषा हैं जो हिंद–यूरोपीय भाषा परिवार की एक शाखा है। संस्कृत में वैदिक धर्म के लगभग सभी धर्मग्रंथ तथा बौद्ध धर्म (विशेषकर महायान) तथा जैन धर्म के भी कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी लिखे गए।

बौद्ध धर्म के जनभाषा में प्रवचनों के साथ लगभग 500 ई. पूर्व से ही पाली जनभाषा के रूप में प्रचलित होने लगी थी। जहाँ संस्कृत ज्ञान–विज्ञान की भाषा बनी रही, वहीं पाली तत्कालीन जनभाषा। महात्मा बुद्ध ने अपने प्रवचन तत्कालीन जनभाषा पाली में दिए, जिसके चलते वे जनमानस को प्रभावित कर सके। और फिर पहली ईस्वी के आसपास प्राकृत का उदय हो रहा था। जिसने आगे चलकर अपभ्रंश का रूप लिया। पतंजलि आदि विद्वानों ने प्राकृत और अपभ्रंश नामों का प्रयोग समान अर्थ में किया है।

हर्षवर्धन (590–647 ई) ने उत्तरी भारत में अपना एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित किया था। वे अंतिम हिंदू सम्राट् थे जिन्होंने पंजाब छोड़कर शेष समस्त उत्तरी भारत पर राज्य स्थापित किया। हर्षवर्धन के शासनकाल का इतिहास मगध से प्राप्त दो ताम्रपत्रों, राजतरंगिणी, चीनी यात्री युवान च्वांग के विवरण और हर्ष एवं बाणभट्ट रचित संस्कृत काव्य ग्रंथों में है। हर्ष स्वयं एक उच्चकोटि का विद्वान था। उसने पूरे देश में अनेक गुरुकुल, आश्रम एवं विहार बनवाए थे, जहाँ विद्यार्थियों को विविध विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। बाणभट्ट के विवरण से पता चलता है कि उस समय वेदों तथा वेदांगों का अध्ययन होता था। ह्यूनसांग ने पंच्चविद्याओं–शब्द विद्या (व्याकरण), शिल्पस्थान विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या (न्याय अथवा तर्क) तथा अध्यात्म विद्या, का उल्लेख किया है, जो बालकों के पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग थीं। उत्तर भारत के इस शक्तिशाली शासनकाल में भी ज्ञान–विज्ञान और उसमें संस्कृत जैसी भाषा की महत्वपूर्ण मुख्य भूमिका थी।

भाषा इतिहासकारों के अनुसार अपभ्रंश का काल 500 ई, से 1000 ई. तक माना जाता है। आगे चल कर देश के विभिन्न भागों में इसके अनेक रूप विकसित होने लगे, इन्हीं के गर्भ से कालान्तर में भारत की आधुनिक भाषाओं का उदय हुआ। शौरसेनी उससे पश्चिमी हिंदी राजस्थानी–गुजराती का, पैशाची से लहंदा व पंजाबी, आदि, ब्राचड से सिंधी, खस से पहाड़ी, महाराष्ट्री से मराठी, अर्धमागधी से पूर्वी हिंदी, मागधी से बिहारी, बंगाली, उड़िया, असमिया आदि। भले ही ये भाषाएँ पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए आधुनिक भाषाओं तक पहुंची हों लेकिन इन सबका मूल स्रोत संस्कृत भाषा ही थी।

भारत में इस्लामिक आक्रमणों और उनके शासन की स्थापना तक भी ज्ञान–विज्ञान मे संस्कृत एक प्रमुख भाषा रही। विभिन्न राजनैतिक कारणों के साथ–साथ भाषा के ह्रास के साथ ही ज्ञान–विज्ञान सहित विभिन्न क्षेत्रों में भी ह्रास दिखाई देता है। सुदृढ़ सैन्य शक्ति के अभाव में 713 ई. में मोहम्मद बिन कासिम और उसके बाद जब भारत पर इस्लामिक आक्रमण प्रारंभ हुए तो हम उनका सामना न कर सके। कहा जाता है कि किसी देश पर शासन करना हो तो वहाँ की भाषा और ज्ञान–विज्ञान के साहित्य को नष्ट कर उन्हें दिलो–दिमाग से गुलाम बनाया जाए। इस्लामिक शासकों और उसके बाद यूरोपीय शासकों ने, सभी ने योजनाबद्ध रूप से भारत की भाषाओं और ज्ञान–विज्ञान के साहित्य को नष्ट किया।

भारत में दुनिया के पहले विश्वविद्यालय 'तक्षशिला विश्वविद्यालय' की स्थापना सातवीं शती ईसा पूर्व हो गयी थी। तक्षशिला विश्वविद्यालय, वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान की राजधानी रावलपिण्डी से 18 मील उत्तर की ओर स्थित था। जिस नगर में यह विश्वविद्यालय था उसके बारे में कहा जाता है कि श्री राम के भाई भरत के पुत्र 'तक्ष' ने उस नगर की स्थापना की थी। तक्षशिला विश्वविद्यालय में पूरे विश्व के 10,500 से अधिक छात्र अध्ययन करते थे। यहां 60 से भी अधिक विषयों को पढ़ाया जाता था। 326 ईस्वी पूर्व में विदेशी आक्रमणकारी सिकन्दर के आक्रमण के समय यह संसार का सबसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय ही नहीं अपितु उस समय के 'चिकित्सा शास्त्र' का एकमात्र सर्वोपरि केन्द्र था। माना जाता है कि छठी सदी के अंत में अरब और तुर्क के मुस्लिम आक्रांताओं ने इस विश्वविद्यालय का और नगर का विध्वंस कर दिया था। मुहम्मद बिन कासिम के बाद महमूद गजनवी और उसके बाद मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण कर अंधाधुंध कत्लेआम और लूटपाट मचाई। इस दौरान उन्होंने हिन्दू मंदिरों, बौद्ध मठों और स्तूपों का विध्वंस किया। सातवीं शती ईस्वी के तृतीय दशक में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने तक्षशिला को उजड़ा हुआ पाया था।

ऐसा ही विश्व के सबसे बड़े शिक्षा के केंद्रों में से एक नालंदा के साथ भी हुआ। नालंदा उस काल में भारत में उच्च विद्या का प्रभावशाली और विश्वविख्यात केन्द्र था। महायान बौद्ध धर्म के इस विद्यालय में हीनयान बौद्धधर्म के साथ ही अन्य धर्मों के तथा अनेक राष्ट्रों के छात्र विद्या ग्रहण करते थे। सातवीं शताब्दी में भारत घुमने के लिए आए चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा इत्सिंग के यात्रा वृतान्तो से इस विश्वविद्यालय के बारे में व्यापक जानकारी मिलती है। नालंदा को स्थानीय शासकों और भारत की दूसरी रियासतों के साथ ही

कई विदेशी शासकों से भी अनुदान मिलता था। यह विश्व का प्रथम पूर्णतः आवासीय विश्वविद्यालय था। उस समय इसमें विद्यार्थियों की संख्या करीब 10,000 और अध्यापकों की संख्या 2,000 थी। इस विश्वविद्यालय में भारत से ही नहीं कोरिया, जापान, चीन, तिब्बत, इंडोनेशिया, फारस तथा तुर्की से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इस विश्वविद्यालय की नौवीं से बारहवीं सदी तक वैश्विक ख्याति रही थी।

नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त शासक कुमार गुप्त प्रथम ने की। इस विश्वविद्यालय को हेमंत कुमार गुप्त के उत्तराधिकारियों का पूरा सहयोग मिला। गुप्तवंश के पतन के बाद भी आने वाले सभी शासक वंशों ने इसकी समृद्धि में अपना योगदान जारी रखा। इसे महान सम्राट हर्षवर्धन और पाल शासकों का संरक्षण मिला तथा स्थानीय शासकों तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साथ–साथ अनेक विदेशी शासकों से भी अनुदान मिलता था। जिस समय भारत पर मुस्लिम शासक बख्तियार खिलजी का शासन था, उसने पुरे नालंदा विश्वविद्यालय को जलवा दिया था। यहाँ के पुस्तकालय में इतनी पुस्तकें थीं कि पूरे तीन महीने तक आग जलती रही। खिलजी ने अपनी शैतानियत का परिचय देते हुए यहाँ के धर्माचार्यों और बौद्ध भिक्षुओं की भी हत्या करवा दी थी। इस प्रकार संस्कृत सहित तत्कालीन भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान–विज्ञान सदा के लिए नष्ट हो गया।

मुस्लिम शासन में संस्कृत भाषा को राजाश्रय या प्रोत्साहन नहीं मिला, जिससे इसकी उपयोगिता बहुत सीमित रह गई। मुस्लिम आक्रमणों के दौरान पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयों के विनाश के कारण अधिकांश संस्कृत ग्रन्थ नष्ट हो गए। केवल वे ग्रन्थ ही बचे जो पुरोहितों, वैद्यों व ज्योतिषियों जैसे पेशेवर लोगों की जीविका से संबंधित होने के कारण इन लोगों के घरों में सुरक्षित रहे। यह भुला दिया गया कि संस्कृत में ज्ञान–विज्ञान का प्रचूर साहित्य उपलब्ध है। इस प्रकार ज्ञान–विज्ञान की विश्व की श्रेष्ठतम भाषा संस्कृत, हिन्दुओं की धार्मिक भाषा बन कर रह गई। मुस्लिम शासनकाल में राजकाज की भाषा फारसी बनी और ज्ञान–विज्ञान और शिक्षा में भी फारसी प्रचलित होने से संस्कृत सहित भारतीय मूल की भाषाओं का विकास अवरुद्ध हो गया, जिसके चलते ज्ञान–विज्ञान में भी भारत का विकास अवरुद्ध हुआ।

मध्यकाल में भारत में अरबी, तुर्की और फारसी भाषाओं का प्रचलन शुरु हुआ और इसी दौर में हिन्दी (खड़ी बोली) भाषा भी विकसित हुई, जिसने आगे चलकर हिंदी का वर्तमान स्वरूप ग्रहण किया। शासन की भाषा फारसी होने के कारण दिल्ली और उसके आसपास बोली जानेवाली खड़ी बोली तथा और फारसी के मेल से ही उर्दू नामक एक नई भाषा बन गई। काफी समय तक उर्दू शासन–प्रशासन की भाषा के रुप में प्रचलित हुई। ब्रिटिश शासनकाल में लार्ड मैकॉले ने भारत में अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए सन 1835 में परंपरागत भारतीय शिक्षा पद्धति के स्थान पर भारत में अंग्रेजी शिक्षा की नींव रखी ताकि भारतीय अने परंपरागत ज्ञान–विज्ञान को भुला कर अंग्रेजी पढ़े और उनके क्लर्क बन सकें, जो उनकी शासन–प्रशासन में मदद कर सकें। अंग्रेजों ने भारतीय भाषा–संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान व धर्म के स्थान पर अपनी भाषा–संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान व धर्म स्थापित करने की नीति अपनाई और राजकाज की भाषा अंग्रेजी हो गई। शासन–प्रशासन और सत्ता की भाषा होने के चलते देश में इसका प्रभाव बढ़ा। इसी प्रकार पुर्तगालियों और फ्रांसिसियों ने भी अपने शासन के क्षेत्र में अपनी भाषाओं अपनाया और बढ़ाया। इन कारणों से भारतीय भाषाओं के प्रयोग, प्रसार व विकास का मार्ग अवरुद्ध होता रहा। विदेशी भाषाओं के आधिपत्य और स्वदेशी भाषाओं के पराभव के चलते, भाषा–संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान में विश्व में अग्रणी देश भारत, इस पूरे पराधीनता काल में न केवल भाषाओं की दृष्टि से बल्कि विकास की दृष्टि से वैश्विक स्तर पर कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सका।

यह सार्वभौमिक सत्य है कि भाषा एक नदी की भांति समय–पथ पर निरंतर आगे बढ़ती हुए निरंतर परिवर्तनशील होती है। विकास और ह्रास के विभिन्न सोपानों से गुजरते हुए स्थान–परिवेश के अनुसार निरंतर बदलती है। हमारे यहाँ तो पुरानी कहावत है– कोस–कोस पर पानी बदले, चार कोस पर वाणी। यानी न केवल समय के साथ बल्कि स्थान के साथ भी बोली में फर्क आ जाता है। जिन दिनों परिवहन के साधन कम थे और नदियों पर पुल भी कहीं दूर दृ दराज होते थे तब नदी के दोनों तरफ की बोली में भी अंतर आ जाता था। इस प्रकार देश में अनेक भाषाओं और बोलियों बोली जाती रही हैं।

स्वतंत्रता के समय जहाँ भारत में देश के 99 प्रतिशत से भी अधिक लोग मातृभाषा में पढ़ते थे वहीं 1986 की शिक्षा नीति में ऐसे बदलाव किए गए कि छोटे–छोटे गाँवों तक अंग्रेजी माध्यम पहुँच गया। एक समय लोग स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर तक भी मातृभाषा माध्यम से पढ़ते थे। कितने ही लोग मातृभाषा में पाठ्य सामग्री के अभाव में भी मातृभाषा में पढ़ कर ज्ञान–विज्ञान में सर्वोच्च शिखर तक पहुँचे। लेकिन 1986 की शिक्षा नीति के चलते बच्चे लगभग पूरी तरह मातृभाषा से कटते गए। आज भी भारत के आविष्कारकों के

नाम ढूंढ़े तो हमें उस काल में जाना पड़ेगा जब प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में थी। और अब जब घुट्टी में अंग्रेजी पिलाने लगे हैं, गाँव–गाँव तक अंग्रेजी माध्यम पहुँच गया है, तो कहाँ हैं आविष्कारक ? मौलिक चिंतन तो मातृभाषा में ही संभव है। शायद आपको जान कर आश्चर्य होगा कि विश्व के 20 विकसित देश वे हैं, जहाँ विद्यार्थी मातृभाषा में पढ़ते हैं। दुनिया के 20 पिछड़े देश वे हैं जो विद्यार्थी विदेशी भाषा में पढ़ते हैं। रटने वाले और नक़ल करने वाले किसी भी क्षेत्र में कुछ नया कैसे कर सकते हैं ? विदेशी भाषा से आविष्कारक कैसे हो सकते हैं ? जी हाँ, मातृभाषा से ही है बच्चों का स्वस्थ और स्वभाविक विकास संभव है।

इस संबंध में 20 अक्टूबर, 1917 को गुजरात के भरूँच में एक शिक्षा सम्मेलन में दिए गए अपने संबोधन में गांधी जी ने कहा था– 'विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत हमें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे स्नातक अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज करने की शक्ति, विचार करने की शक्ति, साहस, धीरज, वीरता, निर्भयता और अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। इससे हम नई योजनाएँ नहीं बना सकते और यदि बनाते हैं तो उन्हें पूरा नहीं कर पाते। कुछ लोग, जिनमें उपर्युक्त गुण दिखाई देते हैं, अकाल ही काल के गाल में चले जाते हैं। उनका कहना था, बच्चों के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है जितना शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध।'

वर्तमान में भी विभिन्न सुविधाओं की कमी के बावजूद विभिन्न राज्यों की बोर्ड की परीक्षाओं में उच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी, मातृभाषा में पढ़ने वाले ही अधिक हैं। शिक्षा के विभिन्न आयोगों एवं देश के महापुरूषों ने सुझाव दिए हैं कि शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए। प्रसिद्ध भारतीय भौतिकीय वैज्ञानिक जयन्त विष्णु नार्लीकर ने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए अंग्रेजी, हिन्दी और मराठी में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। वे ब्रह्माण्ड के स्थिर अवस्था सिद्धांत के विशेषज्ञ हैं और फ्रेड हॉयल के साथ भौतिकी के हॉयल–नार्लिकर सिद्धांत के प्रतिपादक हैं। इनके द्वारा रचित एक आत्मकथा 'चार नगरातळे माझे विश्व' के लिये उन्हें सन् 2014 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उन्होंने हिंदी की अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में विज्ञान–कथाएँ लिखीं। वे लिखते हैं, 'यदि मुझे विज्ञान की उच्च शिक्षा हिंदी माध्यम से मिली होती तो विज्ञान के क्षेत्र में मैं जहाँ पहुंचा, उससे कहीं आगे पहुंचता।' इजरायल के 16 विद्वानों ने नोबल पुरस्कार प्राप्त किए है। सभी ने अपनी मातृभाषा हिब्रू में ही कार्य किया है। तमाम मनोवैज्ञानिकों, शिक्षा–शास्त्रियों, जीव –ज्ञानिकों और प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चों के विकास और राष्ट्र के विकास के लिए मातृभाषा से बढ़कर कुछ नहीं। महात्मा गांधी का कहना था, 'हम जगदीश चंद्र बसु और राय को देखकर मोहान्ध हो जाते हैं। मुझे विश्वास है कि यदि हमने 50 वर्ष तक मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाई होती तो हममें इतने बसु और राय होते कि उन्हें देखकर हमें अचंभा न होता।'

अतीत से ले कर आज तक हमारी ये बोलियाँ और भाषाएँ हमारे जीवन की, हमारे उत्थान और पतन की, हमारे विकास और ह्रास की, हमारे गौरव और विनाश की, हमारे बढ़ने और पिछड़ने की कहानी सुनाती हैं। हम समझें या न समझें ये हमें समझाती हैं कि अपनी भाषा से ही अपना धर्म–संस्कृति, और ज्ञान–विज्ञान है। अपनी भाषा से ही व्यक्ति और राष्ट्र का विकास है, उसीसे मौलिक चिंतन और मौलिक विचार है। उसीसे सृजन और आविष्कार है। अपनी भाषा से ही अपना परिष्कार है।

★

सिन्धी सूफी साहित्य का उद्भव और विकास

डॉ. सुशील जी. धर्माणी*

सिंध, प्राचीन काल में काफी बड़ा प्रान्त था। जिसकी सीमाएँ उत्तर में काश्मीर, कंधार तथा कन्नौज से और दक्षिण में सौराष्ट्र से जाकर लगती थी। यह सैलाबी मैदान है जो सिन्धु नदी और उसके डेल्टा से बना है। सिन्धी व्यापारी ज्ञात विश्व के सब भागों में घूम चुके थे। इनके प्रत्येक प्रांत से सामुद्रिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध थे। विदेश यात्रा में रूचि रखने तथा भिन्न–भिन्न जातियों से मेल–जोल बढाने के कारण सिन्धी उन वर्जनाओं–कुंठाओं से मुक्त है जो प्रायः समाज में पायी जाती है। इनमें अस्पृश्यता तो जैसे है ही नहीं।

सिंध की पावन भूमि जहाँ वैदिक संस्कृति पल्लवित पुष्पित हुई और वेदों की रचना हुई, जहाँ अनेक संतों महात्माओं ने वेदों और आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश दिया, वहां अवश्यमेव श्रेष्ठ साहित्य का सृजन हुआ होगा, यह निश्चित और अविवादास्पद है। हैदर बख्श जतोई ने सिन्धु नदी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा है, 'सिंध प्रदेश का अस्तित्व ही दरियाशाह (महानदी) की बदौलत है। इसके बिना सिंध का कोई महत्व नहीं। सिन्धी जीवन तथा सिन्धी साहित्य में यह महानदी प्रेरणा तथा श्रद्धा का स्त्रोत रही है, जन मानस की आराध्य है।' कुछ यही भाव ऋग्वेद में भी देखा जा सकता है।[1] जल–देवता झुलेलाल (अथवा हलेलूजाह) की धुन सिन्धी मन तथा मस्तिष्क में पैठ गयी है। सिन्धु नदी अपनी दिशा बदलती रहती है, इसी कारण से सिन्धी जीवन तथा सभ्यता अस्थिर व् सतत परिवर्तनशील रही है। नदी तट पर बसे शहरों या गावों का नामोनिशान मिट जाता था। कभी जमीन हरी–भरी तो कभी बंजर हो जाती।[2]

सिंध प्रान्त के जीवन, आचार–विचार, व्यवहार में होने वाले सतत परिवर्तन एवं अस्थिरता का मूल कारण उसका विशिष्ट इतिहास व् भूगोल है। सीमान्त प्रांत होने के नाते विदेशी आक्रमणकारियों के सीधे असर उनपर हुए। इसके बावजूद किसीने भी उस पर अमिट छाप नहीं छोड़ी। आर्य–द्रविड़, आदिवासी जाति, सीथियन व् यूनानी, अरब और यूरोपियन, इरानी व् तुरानी, मंगोल और पठान सब सिंध से गुजरे, हर किसी की छवि इनमें मिलती गयी। इनमें सामंजस्य स्थापित करने व् मुकाबले की अपार शक्ति है, इसी लिए इनमे सहृदयता व् धार्मिक सहिष्णुता देखने को मिलती है।

सिन्धी मूलतः स्वभाव से सूफ़ी है। संप्रदाय– विहीन, जिन्हें धार्मिक अनुष्ठानों में अधिक विश्वास नहीं। इसके बावजूद उनके मनमें उस हर उस चीज के लिय आदर है जिससे आत्मोपलब्धि संभव है। उनके साहित्य के गीतों में आत्म हनन तथा प्रेम के माध्यम से परमात्मा को प्राप्त करने को कहा है। सूफियों की तरह उनका 'प्रेम' भौतिक' प्रेम है। आत्मिक प्रेम तभी सुलभ होता है जब सर्वप्रथम शारीरिक प्रेम के सेतु पर से पार उतरा जाए। इन्होने हर उतार–चढ़ाव में सूफी सिद्धान्तों की शरण ली। अरबी व् फ़ारसी से प्रभावित होकर कुछ सिन्धी कवियों ने मिजाज़ी इल्म अरूज़ के आधार पर काव्य रचे। अनेकों प्रतीकों व् उपमाओं का प्रयोग किया जैसे– शमा–परवाना, गुल–बुलबुल, सागर–जाम, साकी–मैखाने इत्यादि।

सोलहवीं शताब्दी में मुग़ल साम्राज्य में विलय के बाद, सिंध पुनः भारतीय भक्ति आन्दोलन से प्रभावित हुआ। कबीर, तुलसी, मीरा, सूरदास, गुरु नानक व् उनके उतराधिकारी सिख गुरुओं तथा अनेकों योगियों व् सन्यासियों ने सिन्धी साहित्य पर प्रभाव डाला। पर्शिया तथा एशिया के पश्चिमी भागों से आने वाले इस्लाम के स्वतंत्र चिंतकों के विश्वासों के साथ भारतीय विचार–धारा के सम्मिलन से 'सिन्धी सूफी मत' का जन्म हुआ। इनका विश्वास था कि राम और रहीम एक है, खुदा के ज्ञान तथा उसकी प्राप्ति के लिए किसी विशिष्ट मत की आवश्यकता नहीं है।

*** प्राचार्य– तोलानी आर्ट्स व् साइंस कॉलेज, आदिपुर, कच्छ ३७०२०५।**

वास्तविक सिन्धी साहित्य सोलहवी शताब्दी की तीसरी दशाब्दी में प्रारंभ हुआ। उसके पहले लोक कथाओं एवं गीतों में प्रचलित हुआ। शाह अब्दुल लतीफ़ के काव्य में उसे परिपक्वता प्राप्त होती है। उनके पहले का साहित्य केवल मौखिक परम्परा में विद्यमान है। फ़ारसी काव्य सृजन से ही सिन्धी काव्य की वास्तविक शुरुआत मानी जाती है। जिसकी बुनियाद ही रहस्यवाद है, जिसे सूफ़ीमत या तसव्वुफ़ कहा जाता है। यह सूफ़ीमत पुरातन भारतीय सिद्धांतों, वेदांत, योग भक्ति तथा जामी के युसूफ जुलेखा, अत्तार के मंतिक–अल–ताइर और रूमी की प्रसिद्ध मसनवी जैसे फारसी ग्रंथों में प्रतिपादित इस्लामी किस्म के सूफीमत का सम्मिश्रण है। उनका सिद्धांत रहा हैः 'सूफ़ी ला कूफ़ी' अर्थात सूफ़ियों का कोई धार्मिक मत नहीं।

मिर्जा कलीच बेग अपनी पुस्तक 'तसव्वुफ़' में इस मत का समर्थन करते हैं कि सूफीवाद का प्रमुख स्त्रोत कुरान तथा पैगम्बर मुहम्मद के कथन है और उनकी गुह्य (आंतरिक) व्याख्या है। इसी का स्वरुप तसव्वुफ़ सोलहवीं शताब्दी से तमाम सिन्धी कविता में व्याप्त हो गया। इनका मत वेदान्तियों से मिलता है कि "ब्रह्म एक है, तत्त्व एक है, अखिल विश्व में एक ही सत्ता है, उसके अतिरिक्त जो कुछ अस्तित्व में है वह तो मात्र माया (तिलस्म) है। आत्मा और परमात्मा में कोई अंतर नहीं।" जेठराम परसराम ने अपने ग्रन्थ 'सिंध एण्ड इट्स सूफिज़' में सिन्धी सूफ़ी कविताओ को दो शक्तियों का प्रतिफलन मन है; भारतीय और ईरानी।

सिन्धी साहित्य का मूल स्त्रोत धर्म एवं प्रचलित लोककथाएँ है। जिसमे सर्वाधिक वरुण देवता (दरियाशाह) से जुड़ी है। 'सिंधः ए री–इंटरप्रीटेशन' नमक ग्रन्थ में एबट ने वरुण देवता ख्वाजा खिज्र की अनेकों लोक कथाओं को लिपिबद्ध किया है। इनका आधार ऐतिहासिक है। अमरलाल (न मरने वाला पीर) अथवा उडेरोलाल (श्रेष्ठतम पीर) का जन्म सन ६५०–५१ में नसरपुर में हुआ था जिन्होंने उत्पीड़ित हिन्दुओं की रक्षा की जो वीर एवं संत दोनों थे। सबके प्रति धार्मिक सहिष्णुता व् प्रेम दर्शाया। उनके स्तुति में कई भजन तथा गीत लिखे गए जिन्हें 'पंजड़ा' कहते है। उसी तरह पीर उस्मान शाह मर्वदी (लाल शहबाज़) की कथाएं लोक प्रचलित है जिनका अर्थ होता है– आध्यात्मिक महाव्योम में विचरण करना। इन्होने बाज़ का रूप धारण किया था तथा लाल कमीज़ धारण करते थे। इन्हें सिंध में सूफ़ी मत को एकजुट करने का अग्रदूत माना जाता है। कहा जाता है कि इन्होंने सेहवण में शिव की तपस्या की थी। शाह इनायत, सिन्धी के प्रमुख कवि शाह अब्दुल लतीफ़ के समसामयिक कवि थे। किवदंती है कि धोखे से उनका सिर काट कर दिल्ली के शहनशाह को भेजा गया, उस कटे हुए सिर ने जो कविताएं कहीं, उन्हें 'बेसरनामा' कहा गया। इनकी सिन्धी कविता में वह कहते है कि, "मुझ जैसे कुरूप, नीच एवं कमज़ोर व्यक्ति को स्वीकार किया है तथा गले लगाया है।" मुहम्मद सिदीक मेमन ने 'सिन्धी साहित्य का इतिहास' में दोदो चनेसर, हासो और अबड़ो आदि की कथा का वर्णन किया है, ये वह हिन्दू राजपूत थे जिन्हें सुल्तानों ने मौत दी।[4]

बुलड़ी वाले शाह अब्दुल करीम को आलोचक सिंध का चौसर अर्थात 'प्रभात तारा' मानते है, आप शाह लतीफ़ के परदादा है। इनका लिखा बैत 'रिसालो करीमी' में प्रकाशित हुआ। करीम संत प्रकृति के थे, तथा अच्छे गायक थे। वन–खेतों में काम करते करते परमात्मा का चिंतन गीतिबद्ध रूप से प्रस्तुत करते थे। सिंध के सर्वोत्कृष्ट कवि शाह अब्दुल लतीफ़ ने अपने काव्य में लोक कथाओं के माध्यम से सूफ़ी विचार का प्रचार किया है। जिनमें से प्रमुख है– राय डियाच (सुर सोरठ), लीला–चनेसर, उमर–मारुई, मूमल–राणों, नूरी–तमाची, सुहिणी–मेहार, ससुई–पुन्हूँ, तथा कोयल–दीपक। इनमें यह दर्शाया गया है कि आत्मा प्रयत्न द्वारा परमात्मा से एक रूप हो सकती है। सांसारिक वस्तुएं क्षणभंगुर है और ये मात्र आवरण है जो सत्य स्वरुप को समझने में बाधा बनती है। इन्हें उजागर करने के लिए कई बिम्बों का प्रयोग किया है। इश्के–हकीकी (पारलौकिक प्रेम) और इश्के–मजाज़ी (भौतिक प्रेम) तथा असली एवं नकली शराब। पूरे रिसालो में जिस अलंकार का बार–बार प्रयोग किया गया है, उसका सम्बन्ध प्रियतम से लगाव है।

कवि सचल, 'सचल सरमस्त' के नाम से विख्यात हुए। आप श्रेष्ठतम विद्रोही गीति कवि है, जिन्होंने 'कथ्यात्मक कवितायें' कही। जिन्हें 'काफ़ी' कहा गया। इनमें उन्होंने तदयुगीन झूठ–फरेब, पाखण्ड तथा मूर्खतापूर्ण मतांधता के विरुद्ध विद्रोह प्रस्तुत करते हुए– मुल्लाओं, आखुन्दों तथा मखदूमों का पर्दर्फाश किया

है। आप सत्य के अटल पुजारी थे। मान जाता है कि उनके काव्य 'बेखुदी' (आत्म विस्मृति) की परिस्थिति में रची गयी है। तर्क पर प्रेम को तरजीह दी है।

कवि सामी (चैनराय बचोमल) जो एक कपड़े के व्यापारी थे, अपनी शीतलता व् गंभीरता के लिए जाने गए। उनके श्लोकों मे भगवत प्रेम व् समभाव झलकता है। उन्होंने निम्न व् अछूतौद्धार की बात कही जो भगवत भक्ति से अपना भवसुधार सकते है। वे माया को कई नामों से पुकारते। सिन्धी सूफ़ियों का प्रधान केंद्र झोक में है, जहां शहीद शाह इनायत को महानतम सूफ़ी मना जाता है। इनके शिष्य– शाह अब्दुल लतीफ़ हो चुके है।

सिंध में अंग्रेजों का आगमन तथा १८५१ में सर बार्टर फ्रेयर द्वारा अरबी सिन्धी लिपि की स्थापना के दूरगामी असर हुए। फ़ारसी में ऊटपटांग कविताओं की रचना बंद हुई, अब वास्तव में केवल सिन्धी में कवितायें लिखी जाने लगी। अब केवल वे फ़ारसी इल्म–अरुज (छंद शास्त्र) तथा काव्य रूपों जैसे–ग़ज़ल, मसनवी, रुबाई आदि की ओर मुड़े। पहले वे 'बैत' तथा 'दोहों' रूप में थे। इस युग के उल्लेखनीय कवि; बेदिल व् बेकस (पिता पुत्र) थे, जो सचल के अनुयायी थे। यह समय दीवानी मुसद्दसों (छः पंक्तियों वाली कविताएं) और रुबायात का था। सिन्धी में फ़ारसी ढंग से काव्य सृजन का श्री गणेश करने का श्रेय खलीफ़ा गुल मुहम्मद 'गुल' को जाता है। इनके दीवान में १७५ गज़ले है। अंतिम ग़ज़ल में आसन्न मृत्यु का संकेत है और यह ग़ज़ल खुदा और पैगम्बर की प्रसंशा से समाप्त होती है। आप उपदेशात्मक कवि है। सिन्धी साहित्य के एक विलक्षण व्यक्तित्व है हाफ़िज़ हामिद टिखड़, जो दृष्टिहीन थे। वे सरलता से गजले, कसीदे तथा फ़ारसी के अन्य काव्य रूप रच सकते थे। उनके पुत्र मुहम्मद हाशिम मख्लस ने पिता के नाम 'अरमुगान हामिद' नाम का ग्रन्थ प्रकाशित करवाया। हाफ़िज़ व्यंग्य के कवि है। उमर खैयाम की रुबायत का सिन्धी में प्रथम अनुवाद मिर्जा कलीच बेग ने किया, जो किसी भी दृष्टि में अनुवाद लगता ही नहीं। इन्होंने सब विधाओं पर अपनी छवि छोड़ी इस कारण से वह युग 'कलीच युग' कहलाया। इनकी मूल कविताओं का 'सौदा–ए–खाम' (अपरिपक्व प्रलाप) नाम से दो भागों में प्रकाशन हुआ। जिनमे मौलिक काव्य सृजन के साथ–साथ कई अन्य अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी सूफ़ी काव्यों का अनुवाद किया। इन्होंने अपने नाटकों में भी गीतों की आयोजना की है।

आधुनिक युग में श्री हून्दराज 'दुखायल' सिंध के राष्ट्रीय कवि माने जाते है। 'संगीतांजलि' उनका अमूल्य संग्रह है जिसमे आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं जीवन उपयोगी विषयों पर कवितायें लिखी। उनके कविताएं गेय थीं जिन्हें वे जब कभी उत्साहपूर्वक गाते तो लोगों में नई चेतना का संचार होता। साधु टी.एल. वासवानी ने उसी सूफ़ी मत के आधार पर भक्तिपरक कविताएं लिखी। इनके काव्य में ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम झलकता है। इनकी कविताओं में ज्ञान, भक्ति व् प्रेम की त्रिवेणी है। उन्होंने जनता में जनार्दन का साक्षात्कार किया। उनका उपनाम 'नूरी' है, 'नूरी ग्रन्थ' उनका महान काव्य संग्रह है।

स्वामी टेऊंराम, स्वामी ग्वालानंद, कवि पहिलाजराम, श्री भोजल, संत वलीराम आदि संत कवियों ने सिन्धी के साथ साथ हिंदी में भी काव्य साधना की। इन संत कवियों ने अधिकतर भारतीय सूफ़ी परंपरा को अपनाया। जिसमे भक्ति भावना एवं आध्यात्मिक उन्नति सम्बन्धी विषयों पर लिखा हुआ है। अंततः हम इस चर्चा को इस समय यहाँ रोकते है क्योंकि यह सूचि अनंत है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. आर. डब्लू. फ्रेज़र,'लिटरेरी हिस्टरी आफ इन्डिया' लंदन प्रेस 1915, पृ. १६।
2. 'जनरल आफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी': संख्या ३, भाग १४, पलाला प्रेस, इलाहाबाद 2015 संस्करण, पृ. २८१, स्तार्बो की पाद टिपणी।
3. कार्ल एबट, सिंधः ए री–इंटरप्रिटेशन, कोलोराडो युनिवर्सिटी, पांचवा संस्करण, 1976।
4. मुहम्मद सिदीक मेमन, 'सिन्धी अदब जी तारीख'भाग १, पृ. ३२।
5. मिर्जा कलीच बेग, 'तसव्वुफ़'।
6. जेठराम परसराम,'सिंध एण्ड इट्स सूफिज़' इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ सिंधालाजी, आदिपुर. मार्च 2000।
7. लालसिंह अजवानी, 'सिन्धी साहित्य का इतिहास'।
8. डॉ. विमलकुमार जैन, 'सूफ़ीमत और हिंदी साहित्य', हिंदी अनुसंधान परिषद, दिल्ली विष्वविद्यालय, दिल्ली. 1955।

बाल सर्जनात्मक लेखन : स्वरूप, परम्परा और मनोविज्ञान

डॉ. सुनील कुमार मानस*

सामान्य रूप से जब हम किसी वस्तु या घटना के बारे में विचार करते हैं तो हमारे मन एवं मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विचारों का प्रादुर्भाव होता है। मन में उत्पन्न विचारों को जब हम व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं तो उसके पक्ष–विपक्ष, लाभ–हानि आदि की तमाम बातें हमारे समझ में आती है। इस स्थिति में हम अपने विचारों की सार्थकता एवं निरर्थकता को पहचानते हैं। इन्ही सार्थक विचारों को हम जब व्यवहार में प्रयोग करते हैं तब सृजनात्मक चिंतन और लेखन की व्युत्पत्ति एवं अभिव्यक्ति होती है।

बाल रचनात्मक लेखन का तात्पर्य बच्चों से जुड़ा हुआ साहित्यिक लेखन है, जिसे बाल साहित्यकार समय और समाज के अनुरूप सृजित करता है, जिसके माध्यम से वह बच्चों के अंदर नैतिक, आदर्श, प्रेम, अनुशासन, त्याग, बलिदान जैसे भावों को जागृतकर– उनका नव–निर्माण करता है और उनके अंदर एक सचरित्र की संरचना करते हुए उनके विवेक को जागृत करता है तथा उन्हें सत्य के राह पर चलने के लिए प्रेरित एवं अभिप्रेरित करता है। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि बाल रचनात्मक लेखन के माध्यम से ही नव–निहाल बच्चों का कलात्मक निर्माण या सृजन किया जाता है।

बाल रचनात्मक लेखन को यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो हमारे लोक–जीवन की परंपरा में तमाम ऐसी कविताएँ एवं कहानियाँ आदि हैं जो हमारे मनो–मस्तिष्क में अनु–गूंजित होती रहती है और पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपने समय और सरोकारों से जुड़ते हुए– प्रवाहमान भी होती रहती है। इन कविताओं और कहानियों में साहस, निर्भरता, परिश्रम, त्याग, बलिदान आदि की प्रेरणाएँ देखने को मिलती है, जिन्हें बच्चों को समझाने की कोशिश होती है। इसके माध्यम से बच्चों को पूरी दुनिया की जानकारी भी दी जाती थी।

दरअसल बात सर्जनात्मक लेखन की है। सर्जनात्मक लेखन का अभिप्राय सिर्फ बच्चों का मनोरंजन करना नहीं है, बल्कि उन्हें जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराना है। उनके अंदर साहस, नैतिकता, आत्म–निर्भरता आदि के भावों को भरकर कठिन श्रम करने के लिए प्रेरित करना है। उनके अंदर विवेक को जागृत करना है। ऐसा साहित्य लिखित रूप में हमारे सामने मौजूद है। परंपरागत रूप से नारायण पंडित का पंचतंत्र, पं. विष्णु शर्मा का हितोपदेश आदि इसके प्रमुख ग्रंथ है और हमारे उपनिषदीय एवं पौराणिक आख्यानों से जुड़ी हुई ऐसी तमाम रचनाएँ हैं, जो पुस्तकों के रूप में प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

19वीं–20वीं में सदी में बाल साहित्य का रचनात्मक एवं सृजनात्मक लेखन विशेष रूप से हिंदी साहित्य में दिखलाई देता है, जिसमें तमाम कविताएँ एवं कहानियाँ हैं, उपन्यास हैं, यात्रा–वृतांत हैं एवं नाटकीय रूपांतरण भी शामिल है।

बाल सृजनात्मक लेखन का स्वरूप : बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए जिस लेखन की शुरुआत हुई उसे बाल–सर्जनात्मक–लेखन के नाम से जाना गया। इसी लेखन को आगे चलकर के बाल–साहित्य के नाम से भी जाना–पहचाना गया। बाल साहित्य के लेखन को लेकर के तमाम आलोचकों में तमाम मतभेद होते हुए भी अंततः प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उन्हें बाल साहित्य को स्वीकृत देनी ही पड़ी। इस मतभेद में मुख्य बात साहित्य में बाल शब्द को लेकर के आयी। कुछ आलोचकों का मानना है कि साहित्य जैसा भी हो, जिस रूप का हो, वह सिर्फ साहित्य ही है। साहित्य का तात्पर्य आचार्य भामह की साहित्य संबंधी अवधारणा 'शब्दार्थों सहितौ काव्यं' से जोड़कर देखा जाना– बहुत से समर्थ आलोचक स्वीकार करते हैं, जिसका तात्पर्य है– समग्रता के साथ जो सबका हित शब्द–अर्थ के माध्यम से करता है, वह ही साहित्य है। इस दृष्टि से 'बाल' शब्द जुड़ जाने से साहित्य की मुख्य अवधारणा गौण हो जाती है। दूसरी, बात जो

***अध्यक्ष : हिंदी विभाग, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)**

दिखाई पड़ती है– वह है, जो बाल साहित्य है या जिसे हम बाल साहित्य कहते हैं, क्या वह सिर्फ बच्चों के लिए ही महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त क्या बड़ों या अन्य के लिए वह महत्वपूर्ण नहीं! तब यह बात बड़े पैमाने पर बाल साहित्य को लेकर एक प्रश्न खड़ा करती है। तीसरा, यदि उसे बाल साहित्य हम कहते हैं तो बड़े–से–बड़े उम्र के साहित्यकार द्वारा क्यों लिखा जाता है, बाल रचनाकार के द्वारा उसे क्यों नहीं लिखा जाता। जैसा कि हम स्त्री, दलित, आदिवासी आदि साहित्य को ध्यान में रखकर सामान्यतः स्वानुभूति एवं सहानुभूति के आधार पर करते है। तब यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि बाल साहित्य सच्चे अर्थों में अभी व्याख्यायित किया जाना बाँकी है और उसे बाल रचनाकारों की स्वानुभूति के आधार पर ही रचा जरुरी है।

इन सब बातों एवं विचारों को केंद्र में रखते हुए बाल साहित्य पर जो तमाम अवरोधात्मक प्रश्न खड़े हुए हैं उनके उत्तर में कुछ चिंतकों का विचार है कि जो बाल साहित्य है, वह जब लिखा जाता है तब बड़ा–से–बड़ा लेखक भी एक बाल हृदय के राग–रंग में डूबा हुआ होता है। इसी राग–रंग की अभिव्यक्ति ही बाल साहित्य को जन्म देती है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाल साहित्य लिखने के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह बाल रचनाकार ही हो, जैसा कि सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय' लिखते हैं कि आत्म–घटित ही आत्मानुभूति नहीं होता, पर–घटित भी आत्मानुभूति हो सकता है, यदि हमें समर्थ है कि हम उसके प्रति खुलकर रह सकें।

इस आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि जो बाल–हित को ध्यान में रखकर, उसकी सोचने–समझने की अनुभूति को आधार बनाकर, तटस्थ रूप से अपनी अभिव्यक्ति– हृदय को केंद्र में रखकर करता है, वही बाल साहित्यकार है और उसका रचा हुआ साहित्य ही बाल–साहित्य, और उसे ही हम बाल–सृजनात्मक–लेखन भी कह सकते हैं।

बाल सर्जनात्मक लेखन : परिचय : बाल सृजनात्मक लेखन हम उसे कहते हैं जो बालकों की समझ में सरलता से आ जाए और उसके मनो–मस्तिष्क पर एक गहरी एवं अमिट छाप छोड़े, जिसे पढ़ने के बाद उसका बहुमुखी विकास हो सके। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो कह सकते हैं कि बाल साहित्य के अंतर्गत वह समस्त साहित्य आता है जो बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास को ध्यान में रखकर लिखा गया हो, और जिसे पढ़ने में रोचकता एवं जिज्ञासा शुरू से लेकर अंत तक बनी रहे, जिसे पढ़ने–सुनने या देखने के बाद बच्चों का ध्यान उस बात पर हमेशा खींचता रहे।

बाल साहित्य के भी प्राय तीन भेद किए जा सकते हैं– शिशु साहित्य, बाल साहित्य एवं किशोर साहित्य। इन तीनों को बच्चों के उम्र को संज्ञान में रखते हुए सृजित किया जाता है।

बाल साहित्य की जो लौकिक एवं मौखिक एवं पुस्तकीय परंपरा है उसमें आधुनिक चिंतन और समझ के कई आयाम जुड़ते चले जा रहे हैं, जिससे बाल साहित्य के लेखन में बहुत सारे परिवर्तन भी हमें दिखाई देते हैं। इसी के चलते बच्चों को अब आधुनिक ढंग की शिक्षा प्रदान की जाने लगी है। जिसमें कंप्यूटर आदि कीतकनीकी व्यवस्थाएं भी जुड़ती जा रही हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि पारंपरिक बाल शिक्षा निर्मूल हो गई है बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि परंपरा से जुड़ते हुए वर्तमान की समस्त वैचारिकता को आत्मसात करते हुए निरंतर प्रगति की ओर बढ़ना ही बाल साहित्य का अभिलक्ष्य हो गया है। इसलिए जो भी पाठ्य–पुस्तके आदि बाल शिक्षा की तैयार हो रही हैं उसमें बाल प्रकृति के अनुरूप कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास आदि का चयन पाठ्य पुस्तकों का निर्माण भी हो रहा है। जिसकी ओर हमारे पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी ने लिखा है कि बच्चों पर ही हमारा भविष्य निर्भर है और वही हमारी आशा है। इसलिए उनकी शिक्षा राष्ट्र के अत्यंत महत्वपूर्ण कर्तव्यो में से है। आज संसार में बच्चों की मनोवृत्ति और विचार शैली को शिक्षा द्वारा बदलने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस बात को ध्यान में रखते हुए आजादी के बाद प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य लिखा गया। जिसमें अब कोरी भावुकता ही नहीं होती बल्कि विचार की गहरी संवेदना भी दिखाई देती है। इस तरह से बाल साहित्य में गुणात्मक परिवर्तन आया है। रतन लाल शर्मा की खुले रहे यह द्वार, जगदीश चंद्र शर्मा के हाथी दादा, परशुराम शुक्ल की मेरा रोबोट बड़ा निराला औरमंगल ग्रह जायेंगे, सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की 'जाओ बादल' और 'रिमझिम–रिमझिम', नरेंद्र

कोहली की 'दीक्षा' अशोक वाजपेई की 'बच्चे एक दिन' जैसी तमाम रचनाएं हैं, जो बाल साहित्य के नये–नये वैचारिक आयामों को खोलती हैं।

बाल सर्जनात्मक लेखन अब सिर्फ कविता, कहानी, लोरी आदि तक सीमित नहीं रहा, उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा–वृतांत, रिपोर्ताज, जीवनी, चित्र–वृत आदि रूपों में भी हमें दिखाई पड़ रहा है। साथ ही बाल साहित्य पर अब लगातार शोध कार्य भी हो रहे हैं। सन् 1968 में हरिकृष्ण देवसरे ने हिंदी बाल साहित्य पर पहला शोध कार्य किया था। तब से अब तक विभिन्न विश्वविद्यालय में 250 से अधिक शोध कार्य हो चुके हैं और दर्जनों शोधार्थी शोधरत भी हैं। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रकाश मनु, हरिकृष्ण देवसरे, श्री प्रसाद, सुरेंद्र विक्रम आदि ने भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। प्रकाश मनु ने हिंदी बाल साहित्य का इतिहास नाम की पुस्तक भी तैयार की है।

इस तरह से बाल साहित्य को लेकर तमाम प्रयोग एवं अनुप्रयोग हो रहे हैं। जो समय की माँग के आधार पर लिखा, समझा और पढ़ा जा रहा है। फिर भी यह है कहा जा सकता है कि बाल साहित्य का जो सर्जनात्मक पहलू है, वह बच्चों को हर तरह से मार्गदर्शित करने वाला है।

बाल सर्जनात्मक लेखन : उत्पत्ति एवं परिभाषाएँ : बाल साहित्य दो शब्दों से मिलकर बना है बाल + साहित्य अर्थात् जो साहित्य बालकों के लिए लिखा जाता है वह बाल साहित्य होता है– चाहे उसे बच्चे लिखें या प्रौढ़ लिखें। दूसरा 'साहित्य' शब्द में 'बाल' शब्द उपसर्ग के रूप जब लगता है तब 'बाल साहित्य' जन्म होता है। प्रायः यह बच्चों के मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, जिज्ञासा–वृत्ति, मानसिक–विकास, व्यक्तित्व–विकास एवं प्रेरणाप्रद–सामाजिक–बोध के लिए लिखा जाता है। बालकों की रुचियों, कल्पनाओं, बौद्धिक क्षमताओं, उनकी सूझ–बूझ, उनका परिवेश, उनकी मानसिकता आदि को केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य ही 'बाल साहित्य' माना जाता है। पंचतंत्र में विष्णु शर्मा ने कहा है "जिस प्रकार किसी नये पात्र का कोई संस्कार नहीं रहता, ठीक उसी प्रकार बालकों की स्थिति होती है। इसलिए उन्हें कथाओं के माध्यम से ही संस्कार बताना चाहिए। नीति कथाओं से परिपूर्ण बालकों की जिज्ञासा को शांत करने वाला साहित्य ही– बाल साहित्य है।"

कोई भी समाज हो वह बच्चों को बहुमुखी विकास के लिए हमेशा से सचेत रहा है। इसी सचेत होने की प्रक्रिया में उसने तमाम तरह से बच्चों को सिखाने एवं समझाने के लिए कहानियां, कविताएं, पहेलियां, वार्ता आदि का लिखित एवं मौखिक प्रयोग–अनुप्रयोग करता चला आया है। इसी क्रम में पंचतंत्र, हितोपदेश, सुभाषितानि जैसी तमाम रचनाएँ भी हमें दिखाई देती है, किंतु जिस बाल सर्जनात्मक–लेखन की बात हम करते हैं– वह अंग्रेजी के 'चिल्ड्रन लिटरेचर' जैसी विधा से प्रभावित होकर 20वीं सदी में भारतीय–चिंतन–धारा में प्रवेश करती है। जिसमें कविताएँ, कहानियाँ एवं उपन्यास की चर्चा विशेष रूप से की गई है। भारत में 1950 के बाद ही बाल–सर्जनात्मक–लेखन की शुरुवात विधिवत रूप से होती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बाल साहित्य वह दर्पण है जो बच्चों के भविष्य को रूपायित करता है। वह काल्पनिक न होकर उद्देश्य–परक होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो मार्ग अपनाया जाता है वह निश्चय ही बाल सुलभ प्रवृत्ति के अनुकूल होता है। बाल साहित्य की समस्त परिभाषाओं का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि ये परिभाषाएँ प्रायः उन्हीं साहित्यकारों की हैं, जिन्होंने बाल मन को समझा है और बच्चों के लिए बाल साहित्य की आवश्यकता का अनुभव किया है। बच्चों के स्वस्थ विकास हेतु बाल साहित्य की उपयोगिता के महत्व को जाना है।

बाल सर्जनात्मक लेखन की परम्परा : बाल–साहित्य लेखन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। नारायण पंडित ने अपनी पंचतंत्र नामक पुस्तक में पशु–पक्षियों की कहानियों के माध्यम से– बच्चों को शिक्षित करने का माध्यम तलाश किया है। कहानियों को सुनना बच्चों की आदत होती है। कहानियों के माध्यम से ही हम बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं। बचपन में हमारी दादी, नानी, हमारी माँ ही हमें कहानिययाँ सुनाती थी। कहानियाँ सुनाते–सुनाते कभी तो वे हमें परियों के देश ले जाती थी तो यथार्थवादी बातें सिखाती थी। साहस,

बलिदान, त्याग और परिश्रम ऐसे गुण हैं जिनके आधार पर एक व्यक्ति आगे बढ़ता है और ये सब गुण हमें अपनी माँ के हाथों ही प्राप्त होते हैं। बच्चे का अधिक से अधिक समय तो माँ के साथ गुजरता है। माँ ही उसे साहित्य तथा शिक्षा संबंधी जानकारी देती है, क्योंकि जो हाथ पालने में बच्चे को झुलाते हैं, वे ही उसे सारी दुनिया की जानकारी देते हैं। दरअसल, बाल साहित्य का उद्देश्य बाल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उन्हें आज के जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराना है। आज के बालक कल के भारत के नागरिक है। वे जैसा पढ़ेगें उसी के अनुरुप उनका चरित्र निर्माण होगा। कहानियों के माध्यम से हम बच्चों को शिक्षा प्रदान करके उनका चरित्र निर्माण कर सकते हैं, तभी तो ये बच्चे जीवन के संघर्षों से जूझने की क्षमता प्राप्त कर सकेंगे। इन बच्चों को बड़े होकर अंतरिक्ष की यात्राएं करनी हैं, चाँद पर जाना है और शायद दूसरे ग्रहों पर भी। बाल साहित्य के लेखक को बाल–मनोविज्ञान की पूरी जानकारी होनी चाहिए। तभी वह बाल–मानस–पटल पर उतरकर बच्चों के लिए कहानी, कविता या बाल उपन्यास लिख सकता है। बच्चों का मन मक्खन की तरह निर्मल होता है, कहानियों और कविताओं के माध्यम से हम उनके मन को वह शक्ति प्रदान कर सकते हैं जो उनके मन के भीतर जाकर संस्कार, समर्पण, सद्भावना और भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को जगा सकते हैं।

श्री के. शंकर पिल्लई द्वारा बाल साहित्य के संदर्भ में "चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट" की स्थापना 1957 में की गई थी। आज यह ट्रस्ट अपनी 50वीं वर्षगांठ मना चुका है। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य बच्चों के लिए उचित डिजाइनिंग व सामग्री उपलब्ध कराना है। इसमें 5–16 वर्ष तक के बच्चों के लिए बेहतर बाल साहित्य उपलब्ध है। जैसेः

पौराणिक कथाएँ : कृष्ण सुदामा, पंचतंत्र की कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ, प्रहलाद।

ज्ञानवर्धक : उपयोगी आविष्कार, पर्वत की पुकार, रंगों की महिमा, विज्ञान के मनोरंजक खेल।

रहस्य रोमाँच : अनोखा उपहार, जासूसों का जासूस, ननिहाल में गुजरे दिन, पाँच जासूस।

उपन्यास/कहानियाँ : इंसान का बेटा, गुड्डी, मास्टर साहब।

महान व्यक्तित्व : महान व्यक्तित्व पार्ट एक से दस तक।

वन्य जीवन : अम्मां का परिवार, कुछ भारतीय पक्षी, छोटा शेर बड़ा शेर।

पर्यावरण : अनोखे रिश्ते।

क्या और कैसे : कम्प्यूटर, घड़ी, टेलिफोन, रेलगाड़ी।

चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट ने बच्चों के लिए असमिया, बंगाली, हिन्दी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, पंजाबी, तमिल और तेलगू भाषाओं में सचित्र पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इस ट्रस्ट के परिसर में ही डॉ. राय मेमोरी चिल्ड्रन वाचनालय तथा पुस्तकालय की स्थापना की गई है, जो केवल 16 वर्ष तक के बच्चों के लिए हैं। इसमें हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा की 30,000 से अधिक पुस्तकें हैं। इसी क्रम में सन् 1991 में शंकर आर्ट अकादमी की स्थापना की गई है। जहाँ पर पुस्तक, चित्र, आर्ट तथा ग्राफिक के कार्यक्रम चलाए जाते हैं। शंकर इंटरनेशनल चित्रकला प्रतियोगिता भी पूरे देश में आयोजित की जाती है जिससे बच्चों में सृजनात्मक रुचि का विकास होता है।

पत्रिकाओं के स्तर पर अनेक भारतीय भाषाओ में चंपक, हिन्दी में बालहंस, बालभारती, नन्हें सम्राट, नंदन तथा युवाओं के लिए मुक्ता प्रकाशित की जाती है।

बाल सर्जनात्मक लेखन के मनोवैज्ञानिक आयाम : बाल–मनोविज्ञान का अध्ययन करने वाली शाखा का नाम है– बाल मनोविज्ञान। विकास की प्रक्रिया में बालक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अभिभावक, शिक्षक, समाज–सुधारक, राजनेता सभी की आवश्यकताओं का केन्द्र बालक है। बाल मनोविज्ञान में बालक के व्यवहार का समस्त अध्ययन किया जाता है, लेकिन विकास के अन्तर्गत उन सभी तथ्यों तथा घटकों का अध्ययन किया जाता है, जो बालक के व्यवहार को निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं।

बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्त

1. **मनोविश्लेणात्मक सिद्धांत–** इस सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड द्वारा किया गया हैं। इनके अनुसार व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपनी क्षमताओं में वृद्धि करने का कार्य करता हैं। यह सिद्धांत आधुनिक समय का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिद्धांत हैं।
2. **व्यवहारवादी सिद्धांत–** इस सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक जॉन डॉलर एवं पी.जे नीर द्वारा किया गया था। इस सिद्धांत के अनुसार बालकों के व्यवहार के आधार पर बालकों की मनोदशा को आसानी से समझा जा सकता हैं। अर्थात् उनकी आवश्यकता एवं उनके मन–मस्तिष्क में चल रहे द्वंद्व को आसानी से पहचाना जा सकता है।
3. **संज्ञानात्मक सिद्धांत–** इस सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक गेस्टाल्ट द्वारा किया गया था। इस सिद्धांत के अनुसार बालकों की बुद्धि एवं ज्ञान में हो रहे परिवर्तनों के आधार पर उनके व्यवहार में भी परिवर्तन आते रहते हैं।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में बालकों की सीखने की प्रक्रिया, उनकी स्मरणशक्ति और बुद्धि के विकास पर अनेक महत्व के प्रयोग हो रहे हैं। कुछ महापुरुषों ने अपने बाल–काल–संबंधी–अनुभव के आधार पर अपनी जीवनी लिखी हैं और कुछ लोगों के बचपन की बातें– उनके मित्रों ने, अथवा उनपर श्रद्धा या स्नेह करने वालों ने लिखी हैं। इन जीवनियों से भी अच्छी सामग्री इकट्ठी हो जाती हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्रश्नावलियाँ बनाकर माता–पिता तथा शिक्षकों से उपयोगी जानकारी प्राप्त की है। बहुत सी बातें बालकों से प्रश्न पूछकर भी ज्ञात की गई हैं। बाल साहित्यकार हमेशा बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए ही बाल साहित्य लिखता है। बाल मनोविज्ञान बालकों के व्यक्तित्व–विकास को समझने में सहायक होता है। बाल साहित्यकार अपने साहित्यिक निर्देशन के द्वारा ही बालकों के रुचियों के अनुरूप उनमें विविध प्रकार के कौशलों का विकास करता है। बाल मनोविज्ञान के जरिये बालक के व्यक्तित्व का अध्ययनकर उसका बेहतर भविष्य बनाने की कोशिश करता है। बाल मनोविज्ञान का अध्ययन प्राथमिक शिक्षकों के लिए अति आवश्यक है, ताकि वे बालकों को सही तरीके से पढ़ा सकें।

बाल सर्जनात्मक लेखन का मुख्य मनोवैज्ञानिक उद्देश्य है– मनोविज्ञान को सही दिशा देकर उसका मनोवैज्ञानिक विस्तार करना। यानी कि सोचने–समझने की मानवीय शक्ति विकसित करना। सूक्ष्म–से–सूक्ष्म बातों की ओर बालक की कल्पना शक्ति को ले जाना और उसे पल्लवित एवं पुष्पित होने का अवसर प्रदान करना। यह मनोविज्ञान बच्चों के अंदर तमाम तरह की समझ विकसित करता है, जिसमें पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रतिमान भी निर्धारित होते हैं, जो उसके अन्दर भावात्मक एवं संवेदनात्मक बहुआयामी दृष्टिकोणों को जन्म देते हैं, जिससे उसके जीवन की समझ बेहतर होती है।

यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि बच्चों को जहाँ एक और उच्च आदर्श की ओर प्रेरित करता है, वहीं दूसरी ओर उसके अंदर तमाम तरह के सामाजिक कौशल भी विकसित करता है। उसके अंदर बड़ों के प्रति झुकने की शक्ति भी विकसित करता है और आत्म सम्मान की ज्योति भी जगाता है। उसे सकारात्मक सोच और दिशा की ओर बढ़ने की यह प्रेरणा भी प्रदान करता है। बच्चों के लिए जो कठिन है, असाध्य है– उसे सरल एवं साध्य बनाता है। उसके अंदर कभी भी अवसाद की भावना नहीं पैदा होने देता। हमेशा आगे बढ़ाने की बेचैनी और शक्ति जागृत करता है। ठीक उसी तरह जिस तरह से हरिवंश राय बच्चन की कविता 'नीड़ का निर्माण फिर फिर' एक प्रकार से हमेशा नित–नूतन–नवीन की ओर बढ़ने को प्रेरित करती है।

सामान्यतः कोई भी रचना हो उसमें एक तरह का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण समाहित ही रहता है। अस्तु कोई भी रचना हो या कोई भी रचनाकार हो– वह मनोविज्ञान से बच नहीं पाता। हर एक रचनाकार में या हर एक रचना में मनोविज्ञान के आयाम तलाशे जा सकते हैं, किंतु फिर भी हिंदी साहित्य में जैनेंद्र कुमार, इलाचंद जोशी एवं अज्ञेय को मनोवैज्ञानिक चिंतन का पर्याय माना जाने लगा है, इन रचनाकारों ने बाल साहित्य भी लिखा है– जिसमें जैनेंद्र कुमार, अज्ञेयका नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। जैनेंद्र कुमार की बाल मनोवैज्ञानिक कहानियों में– लाल सरोवर, जंगल की आवाज, खेल, किसका साया, चिड़िया

की बच्ची, एक रात, अपना अपना भाग्य– आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। अज्ञेयकी कहानियों में– जिज्ञासा, जिजीविषा, क्षमा, चिड़ियाघर, पुरुष का भाग्य– आदि विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं और यदि इलाचंद्र जोशी की बात करें तो उनकी बालमनोवैज्ञानिक कहानियों के अंतर्गत– रेल की रात, संन्यासी, त्याग और भोग, जहाज का पंछी, सुबह के भूले– आदि ध्यान देने योग्य हैं।

कुल मिलाकर बाल मनोविज्ञान साहित्य बच्चों को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से इस योग्य बनाता है कि वह कभी भी किसी भी बात को लेकर के हैरानी–परेशानी में नहीं पड़ते, स्वयं हर कार्य को करने, परेशानियों को सुलझाने का रास्ता तैयार करने के योग्य हो जाते हैं। अज्ञेय का उपन्यास से– 'शेखर : एक जीवनी'– को पढ़ने के बाद बाल मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। यह बाल मनोविज्ञान के तमाम वैचारिक आयामों को खोलने वाला भी उपन्यास है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि–

- बाल साहित्य बच्चों के सृजनात्मक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक उपादान है।
- बाल साहित्य बच्चों के अंदर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है जिससे उनके मन में तमाम तरह के जिज्ञासात्मक प्रशन उभरते हैं।
- बाल साहित्य कलात्मक रूप से बच्चों के अंदर नैतिकता, मानवीय–मूल्यों का विकास करता है और उनके चरित्र निर्माण में सहायक होता है।
- बाल साहित्य बच्चों के अंदर देश, समाज एवं परिवार की सेवा का भाव जागृत करके उन्हें महत्वपूर्ण नागरिक बनने की प्रेरणा प्रदान करता है।
- बाल साहित्य केवल परंपरा, नैतिकता आदि की ही बात नहीं करता बल्कि बच्चों को अपने समय के सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक परिवेश आदि से जो भी जोड़ता है। साथ–ही–साथ उन्हें यह प्रेरणा करता कि आने वाले समय को वह कैसे बेहतर करे?
- बाल साहित्य हर एक विधा में कथावस्तु का प्रयोग होता है।
- बाल साहित्य के बगैर किसी भी देश, जाति या समाज के भविष्य को बेहतर नहीं बनाया जा सकता।
- बाल साहित्य हमेशा बाल मन के द्वारा ही रचा जाता है, जहाँ बौद्धिकता का चमत्कार या कहूं आतंक नहीं होता। वह स्वाभाविक चेतना के सहज विस्तार का अंग होता है।
- बाल साहित्य बच्चों को कला, संस्कृति एवं साहित्य को जानने का एक बेहतर अवसर प्रदान करता है तथा भाषा के विविध रूपों एवं प्रयोग को समझने का माध्यम भी बनता है।

संदर्भ–सूची :–

1. बाल साहित्य के प्रतिमान– फाटक गूंगे नबाब, राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर (2009), अमीनाबाद–लखनऊ।
2. हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन–हरिकृष्ण देवसरे, आत्माराम एण्ड संस (1969), दिल्ली।
3. हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास – सुरेन्द्र विक्रम, साहित्य वाणी, इलाहाबाद।
4. समकालीन हिन्दी बाल कविता – राजेन्द्र कुमार शर्मा, फाल्गुनी प्रकाशन (2013), दिल्ली।
5. बाल कविता में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना – शिरोमणि सिंह, आशा प्रकाशन (2013), कानपुर।
6. कैसे बने बालक संस्कारी और स्वस्थ – प्रेम भार्गव, राधाकृष्ण पेपरबैक्स (2015), नई दिल्ली।
7. हिन्दी बाल साहित्य विचार और चिंतन – शकुंतला कालरा, नमन प्रकाश (2014), नई दिल्ली।
8. हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन – मस्तराम कपूर, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. (2015), नई दिल्ली।
9. नया ज्ञानोदय – लीलाधर मंडलोई, नवम्बर 2014।
10. आजकल –द फरहत परवीन (सं.), नवम्बर 2014।
11. हिन्दी बाल साहित्य प्राचीन एवं आधुनिक दृष्टि, अभिनेष कुमार जैन, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली।

ꕥ★ꕥ

कामायनी महाकाव्य की पृष्ठभूमि रचती कविता है 'प्रलय की छाया'

डॉ. अर्चना त्रिपाठी*

प्रलय की छाया 'कामायनी' से गहरे स्तर पर जुड़ी हुई है। इसे कामायनी की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। यह रचना सन् 1931 की है। इसमें एक विलासप्रिय रूप गर्विता नारी के पतन की गाथा है। कामायनी सन् 1936 की रचना है। यहाँ प्रलय की छाया दिखाई देती है और कामायनी में प्रलय आ चुका है और सब कुछ नष्ट–भ्रष्ट हो चुका है। कामायनी में प्रसाद देव सभ्यता, जो विलासी था का पतन दिखाते हैं। वे चिन्ता सर्ग में पतन का कारण विलासिता और अंहकार बताते हैं। क्या कारण है कि 1931 तक प्रसाद को प्रलय की छाया दिखाई देने लगती है और 36 तक आते–आते प्रलय आ चुका रहता है। प्रसाद मनुष्य थे, वे कोई देवलोक के प्राणी नहीं थे कि देवलोक का विलास देखने गए थे। जाहिर है कि अपने ही युग का विलास देख रहे होंगे। यह देव सभ्यता प्रसाद के समय की समान्ती सभ्यता ही है।

कामायनी के प्रसंग को भारतीय संदर्भ में देखते हुए डॉ नामवर सिंह ने लिखा है, "देव सभ्यता का ध्वंस वस्तुतः हिन्दू राजाओं और मुसलमान नवाबों तथा मुसलमान बादशाहों के विध्वंस का प्रतीक है।"[1] 'कामायनी एक पुनर्विचार' में मुक्तिबोध का भी मानना है कि उसमें देव विलासिता का जो चित्र है वह प्रतीकात्मक है। इस प्रकार देवसभ्यता प्रकारान्तर से सामन्ती सभ्यता की विलास प्रवृत्ति को नष्ट करती है और यह विलासिता प्रत्यक्ष रूप में 'प्रलय की छाया' में दिखायी देती है। प्रलय की छाया में स्त्री का जीवन विलासी जीवन है जो अपने रूप के बल पर सत्ता को पाना चाहती है और भारतेश्वरी बनने की कामना रखती है किन्तु अंत बड़ा त्रासद होता है; उसे पश्चाताप होता है। वह कहती है कि मुझमें शुद्ध प्रेम का अभाव था। देश के प्रति सच्ची निष्ठा नहीं थी।

'कामायनी' का मुन चिंता सर्ग में अपने अतीत में खोए हुए विलास और वैभव की चिन्ता से ग्रस्त है। कमला भी अतीत की घटनाओं को चिन्तन द्वारा पुन सृजित करती है, जिसमें उसे अपराधबोध महसूस होता है। प्रलय की छाया निश्चय ही कामायनी महाकाव्य की पृष्ठभूमि रचती है। यहाँ निराशा का धुँधलका (संध्या) है। संध्या में ही सबकुछ घटित होता है। इसमें प्रसाद राजनीति और विलासिता के केन्द्र दिल्ली को भी संध्या में चित्रित करते हैं–

"देखती थी दिल्ली कैसी विभव विलासिनी
यह ऐश्वर्य की दुलारी प्यारी क्रूरता की
एक छलना सी सजने लगी उसकी सन्ध्या में
आई फिर रजनी थी कृष्णा वह
खोलकर ताराओं की विरल दशन पंक्ति
अट्टाहास करती थी दूर मानों व्योम में जो न सुन पड़ा
अपने ही कोलाहल में"[2]

प्रलय की छाया की संरचना वृत्ताकार है। इसका प्रारंभ अपने अंत से जुड़कर एक वृत्त की संरचना बनाता है। कविता की लंबाई उस वृत्त की परिधि बन जाती है। इस वृत्ताकार आवर्त में हर बार एक संध्या आती है और अपने साथ एक घटना लाती है, जो कमला के जीवन से जुड़ी रहती है, सभी घटनाएं संध्या के बिम्ब में ही आती हैं। कविता में संध्या कभी रागमयी है तो कभी विरागमयी। फ्लैश बैक टेकनीक में रची गई यह कविता स्मृतियों से शुरू होती है और एक एक करके क्रम से सारी घटनाएं आती जाती है और अन्त में जाकर प्रत्येक घटना एक दूसरे से जुड़कर आख्यान को पूरा करती है। कविता इस तरह शुरू होती है–

***असिस्टेंट प्रोफेसर, जीसस एण्ड मेरी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) दिल्ली।**

"थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
संध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में।
और उस दिन तो,
निर्जन जलधि – बेला रागमयी संध्या से
सीखती थी सौरभ से भरी रंगरलियाँ।"[3]

नाटकीयता, चित्रगत जटिलता, मुक्त छंद का विन्यास, लयात्मकता अन्विति आदि इस कविता की संरचना के आधार हैं। कविता की नाटकीय रूप में प्रस्तुति प्रसाद के रचना विधान की महत्वपूर्ण विशेषता है। 'प्रलय की छाया' कमला का एकालाप है, जो संवेदना को झकझोरने में सक्षम है। कविता के रंगमंच पर रूपगर्विता नारी की उपस्थिति एकालाप (स्वगत कथन) से ही होती है। इसके अलावा कविता में नायिका के मानसिक धरातल पर घटित वैचारिक घात– प्रतिघात के आघात में भी द्वन्द्वपूर्ण नाटकीयता है। नाटकीयता की सहायता से ही कवि ने रूप में भ्रम को तोड़ा है। इस एकालाप में जहाँ –जहाँ कमलाका एकालाप आया है वहाँ–वहाँ नाट्य तत्व सजग होकर कविता को अपेक्षित प्रभाव की ओर मोड़ने और गति देने में सहायक हुआ है।

कविता की नाटकीयता द्वंद्व संघर्षमय स्थितयों के तनाव में तो है ही दृश्य चित्रण में भी है। कमला की पूर्व स्मृतियाँ एक के बाद एक दृश्यों के रूप में कौंधती है जिससे एक चित्रगत जटिलता उभरकर सामने आती है। प्रसाद ने अपने नाटक स्कंदगुप्त में लिखा है कि 'कवित्व वर्णमय चित्र है।' प्रस्तुत कविता में नायिका कमला के द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व को चित्रित करने के लिए प्रसाद ने चित्रगत जटिलता का विधान किया है यहाँ रूपगर्विता नारी के सौन्दर्य गर्व को प्रसाद ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"मेरे उस यौवन के मालती – मुकुल में
रन्ध्र खोजती थी रजनी की नीली किरणें
उसे उकसाने को हंसाने को।"4

मालती की कली रात में ही खिलती है, रात्रि के अंधेरे में। इसी कारण रात को नीली किरणें उसके सुगठित रूप में छिद्र बनाकर प्रवेश करना चाहती थीं, जिससे उसकी पंखुड़ियाँ खिल उठे।

"नूपुरों की झनकार घुली– मिली जाती थी,
चरण अलक्तक की लाली से
जैसे अंतरिक्ष की अरूणिमा
पी रही दिगन्तव्यापी संध्या संगीत को।"[5]

कमला के व्यक्तित्व की जटिलता, द्वन्द्वात्मकता को उभारने के लिए कवि ने यह विधान रचा है। श्री रमानाथ सुमन के अनुसार रविन्द्रनाथ की उर्वशी में भी रूप और लालसा का इतना सुन्दर चित्र नहीं मिलता।

यह कविता मुक्त छंद में रची गई है। छंद से मुक्ति आधुनिकता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। हिन्दी में सर्वप्रथम निराला ने 1916 ई. में 'जूही की कली' लिखकर मुक्त छंद का प्रणयन किया। मुक्त छंद की इस कविता में लय की एकसूत्रता विद्यमान है। 'स्निग्धता बिछलती जिस अंग मेरे पास' और 'क्षण भरी चाहती जगाना मैं सुलतान के ही उस निर्मम ह्दय में को', अपवाद स्वरूप मान लिया जाए तो छंद का प्रवाह पूरी कविता में न कहीं से टूटता है और न खटकता है। उसमें लयात्क अन्विति ही नहीं है कथ्य की अन्विति भी है। रूप गर्विता स्त्री के मनोवैज्ञानिक आत्मविश्लेषण का सिलसिला प्रारंभ से अंत तक निर्वाध चलता रहता है।

इस कविता की भाषिक संरचना में प्रगीत पद्धति वाली छायावादी भावुकता का खटकाव शुरू से अंत तक मौजूद है। कवि को पूरी तरह से इसका बोध है कि गीत और प्रगीत के युग में एक लंबी कविता लिख रहा है। इसके लिए भावुकता का जिस मात्रा में निषेध और बौद्धिकता का जिस मात्रा में स्वीकार होना चाहिए उसका ख्याल प्रसाद को अवश्य है किन्तु फिर भी द्वन्द है छायावादी भाषा–संस्कार से मुक्त होना प्रसाद जी के लिए आसान काम नहीं था, जिस भाषा को उन्होंने सजाया, संवारा, निखारा और अर्थवान

बनाया उसको अचानक छोड़कर बौद्धिक भाषा अख्तियार कर लेना पूरी तरह मुमकिन तो कतई नहीं था, फिर भी प्रयास यथार्थ को यथार्थवादी भाषा में अभिव्यक्त करने का ही है।

नई समीक्षा के महत्वपूर्ण आलोचक रैन्सम का मानना है कि कविता में स्ट्रक्चर और टेक्शचर का तनाव होता है। टेक्शचर बुनावट और स्ट्रक्टर बनावट (निर्मिति) कविता में टेक्शचर और स्ट्रक्टर या संरचना को मजबूत और अर्थवान बनाता है। अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, शब्द चयन आदि टेक्शचर की श्रेणी में आते हैं। इनसे काव्य में असंगति की सृष्टि होती है जो अन्ततोगत्वा काव्य की संगति में बदल जाते हैं।

'प्रलय की छाया' कविता की भाषिक संरचना जटिल है। इस जटिलता को समझने के लिए कविता की बुनावट पर प्रकाश डालना जरूरी है। यह पूरी कविता संध्या में बुनी गई है। संध्या संधिकाल की स्थिति होती है। प्रकाश और अंधकार दोनों के बीच की स्थिति। कविता का प्रारंभ 'धूसर' रंग की संध्य से होता है और अवसान कालिमा की धारा में परिणत होने वाली रक्तमयी प्रगाढ़ संध्या से। बीच–बीच में कहीं मादक संध्या आती है तो कहीं छलानामयी। इस प्रकार देखे तो सभी संध्याएं छायावाद की विशेषताओं (रागात्मकता, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता) सादृश्य विधान की नवीनता को रचना – विधान में पुष्ट करती हैं। 'प्रलय की छाया' में सुन्दर बिंबों का संयोजन मिलता है । उदाहरण–

"नूपुरों की झनकार घुली– मिली जाती थी,
चरण अलक्तक की लाली से
जैसे अंतरिक्ष की अरूणिमा
पी रही दिगन्तव्यापी संध्या संगीत को।"[6]

इस उदाहरण में नूपुरों की मधुर झनकार के प्रभाव को समग्रता में उपस्थित करने के लिए प्रसाद ने यहाँ पर सर्वथा नूतन और समृद्ध बिब प्रस्तुत किया है 'दिगंतव्यापी संध्या संगीत'। यह बिम्ब उस झनकार से गुंजरित संपूर्ण वातावरण को अत्यंत जीवंत एवं मूर्त रूप प्रदान कर देता है। इसी प्रकार रजनी की नीली किरणों में मुकुल को गुदगुदा कर विकसित काने की सामर्थ्य का यह सक्षम बिम्ब कैशोर्य के यौवन में पदार्पण का सुन्दर अंकन है।

प्रसाद स्त्री के रूप के सफल चित्रकार है। उन्होंने कमला के सौन्दर्य का चित्रण करने के लिए जो उपमाएँ, प्राकृतिक प्रतीक प्रयुक्त किया है वह उसके रूप को और अधिक ऐश्वर्यशाली बना देता है–

"सृष्टि के रहस्य – सी परखने को मुझको
तारिकाएं झांकती थीं
शत–शत दलो की
धागा गंध झीनी–झीनी मधुर रोम में
बहती लावण्य धारा।"[7]

यहाँ सृष्टि के रहस्य अपूर्व सौन्दर्य राशि की व्यंजना करता है। शत–शत दलो की मुद्रित भीनी गंध अप्रतिम स्निग्धता, कोमलता, माधुर्य का सूचक है। यहां सार्थक प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। सुन्दर प्रतीकों के माध्यम से प्रसाद ने नारी यौवन और सौन्दर्य का जैसा सजीव, मादक मोहक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है वैसा बहुत कम कवि कर सके हैं। कविता की बुनावट कहीं–कहीं अतार्किक लगती है जिससे असंगति पैदा होती है किन्तु वही कविता की संरचना को मजबूत और सार्थक बनाती है। उदाहरण के लिए–

"लहरे उठती थी मानों चूमने को मुझकों
और सांस लेता था समीर मुझे छूकर।"[8]

यह जो वाक्य है– सांस लेता था समीर मुझे छूकर। यह अतार्किक है क्योंकि समीर अपने आप में प्राणवायु है। किन्तु यह प्रयोग कविता की भीतरी बनावट को मजबूत बनाता है। प्रसाद जटिल संवेदना के कवि है। कविता में जो प्राकृतिक प्रतीक आए हैं वे मानव मनोभाव के अनुरूप ही आए हैं। यह छायावादी प्रकृति चित्रण की विशेषता है। यहाँ प्रकृति, प्रकृति चित्रण के रूप में नहीं आती बल्कि यह मानवीकरण के रूप में आती है। यहाँ भी प्रकृति का मानवीयकरण दिखाई देता है–

"श्यामा सृष्टि युवती थी
तारक– खचित नीलपट परिधान था
अखिल अनन्त में
चमक रही थी लालसा की दीप्त मणियाँ
ज्योतिमयी, ह्रासमयी, विकल विलासमयी।"[9]

प्रसाद का शब्द चयन अर्थ की दृष्टि से ही उपयुक्त नहीं है वह मधुमय, संगीत मय और काव्यात्मक भी है जो कविता की लय को बनाए रखने में सफल सिद्ध हुआ है। सटीक और साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग प्रसाद के काव्य भाषा की एक अन्य विशेषता है। लक्षणा का प्रयोग कर कविता को एक विशिष्ट उत्कर्ष प्रदान किया है–

"मुकुट पहनते थे सिर, कभी लौटते थे–
रक्त– दिग्ध धरणी में रूप की विजय में।"[10]

रूप की विजय में उपादान लक्षणा है तो 'निर्जन जलधि बेला, रागमयी संध्या से' में अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना है। कहीं–कहीं अंग्रेजी जैसी वाक्य रचना भी कविता को अभिनव सौन्दर्य प्रदान करती है । जैसे 'लघुता चली भी माप करने महत्व की और दुर्भाग्य पीछा करने में आगे था। इसी प्रकार के प्रयोग हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'प्रलय की छाया' आख्यान काव्य होते हुए भी तीव्र भावोद्रेक के कारण इसके सारे कथा – सूत्र गौण हो गए है। कमला के सौन्दर्य चित्रण तथा जीवन परिस्थितयों के अनुरूप उसकी विभिन्न मनः स्थितियों के चित्रण में प्रसाद की प्रतिभा, अनुभूति, बिम्ब योजना, रूप, गुण धर्म – स्वाभावादि के अनुसार भावश्रित है सभी प्रकार की मनःस्थितियों और मनोभावों के अंकन में वह सफल हैं। उदात्त गंभीर मनःस्थिति का चित्रण करते समय यदि उनकी भाषा भव्य और उर्जस्वित है तो कोमल, मधुर भावों का चित्रण माधुर्य सम्पन्न भाषा में हुआ है। जयशंकर प्रसाद की रचनात्मक पृष्ठभूमि का निर्माण परस्पर विरोधी तत्वों से मिलकर हुआ है। उनकी लम्बी कविताओं में इतिहास और तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना की उपस्थिति एक साथ मौजूद दिखाई देती है। प्रसाद इतिहास के अनुशीलन द्वारा वर्तमान समय को सुलझाने का प्रयास करते हैं। इतिहास में जाकर वह अपनी परम्परा से जुड़ते हैं और उस परम्परा बोध के आधार पर वर्तमान समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद अपनी कविताओं में परम्परागत मूल्यों की रक्षा करते हुए आदर्श की स्थापना करते हैं। प्रसाद की लम्बी कविताओं में देश की वर्तमान दशा की चिंता के साथ स्वाधीनता की पुकार सुनाई देती है। उनकी कविताओं में अतीत और वर्तमान का संघर्ष दिखाई देता है। उनकी कविताओं में मनुष्य को पराधीनता से मुक्त कर सुखी बनाने का आग्रह है और व्यक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण मानव समाज की कल्याण कामना निहित है। प्रसाद की कविताओं में पराधीनता की गहरी पीड़ा के साथ स्वत्व की चेतना मौजूद है। इतना ही नहीं प्रसाद को राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक यथार्थ की पहचान भी है, इससे उनकी लम्बी कविताओं में देखा जा सकता है। उसकी लम्बी कविताए केवल गौरवगाथा नहीं है बल्कि उनमें युग का यथार्थ मौजूद है।

संदर्भ–सूची :–

1. नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, पृ 146।
2. जयशंकर प्रसाद, लहर, पृ. 85।
3. वही, 69।
4. वही, पृ.69।
5. वही, पृ 70।
6. वही, पृ.70।
7. वही, पृ. 69।
8. वही, पृ 69।
9. वही, पृ 71।
10. वही पृ. 73।

साहित्य और मनोविज्ञान का अन्तर्सम्बंध

डॉ. प्रज्ञा शर्मा*

शोधालेख का प्रारूप

हिन्दी ही नहीं बल्कि किसी भी साहित्य को ले लें, यदि उसके इतिहास पर नजर डालें तो वह कई कालखंडों में विभक्त दिखाई देता है। यह कालखंडों का भेद कालाश्रित तो होता ही है, साथ ही इस साहित्य के कला पक्ष में भी व्यापक अन्तर दिखाई देता है। साहित्य के इतिहासकार इसे नाम 'साहित्य का विकास' देते हैं और यह सही भी है, लेकिन वास्तविकता देखी जाऐ तो यह विकास मनोविज्ञान पर ही निर्भर है। साहित्य में ये परिवर्तन साहित्य सृजकों व पाठकों की सोच में मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के कारण होते हैं। ये मनोवैज्ञानिक परिवर्तन परिस्थितिजन्य होते हैं। जब कोई भी परिस्थिति मानवमन को अत्यंत प्रभावित करती है, तो इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव स्वाभाविक रूप से साहित्य पर दृष्टिगोचर होता ही है।

बीज शब्द

साहित्य में व्यापक परिवर्तन, मानवमन का प्रभाव, बाल साहित्य में मनोविज्ञान, आंगिक प्रदर्शन की तरह प्रभाव, नई कविता व कहानी आंदोलन, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन, साहित्य की प्रभावशीलता का विकास, मानवीय मनोभावों की अभिव्यक्ति, साहित्य का मानवीय क्षितिज, प्रतिमानों का सतत परिवर्तन, निष्कर्ष।

स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात के परिदृश्य में आमूलचूल परिवर्तन आया। इस परिदृश्य ने हिन्दी साहित्य पर भी व्यापक प्रभाव डाला। स्वतंत्रतापूर्व के हिन्दी साहित्य में नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन की हलचलों से भरी साहित्यिक परम्पराऐं दृष्टिगोचर होती हैं, तो उपनिवेशवाद का विरोध भी। विभिन्न अन्तर्विरोधों व विडम्बनाओं के बावजूद इनमें राष्ट्रीयता और राष्ट्र की प्रतिष्ठा का संघर्ष अनिवार्य रूप से इस दौर की साहित्यिक परम्पराओं में शामिल था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह संघर्ष समाप्त हो गया। राजनीतिक तथा सामाजिक सोच में भी तेजी से परिवर्तन आ गया। साहित्य की समस्याऐं बदल गईं और इसके साथ साहित्यिक परम्पराओं में भी नवीनता तथा व्यापकता उत्पन्न हो गई। ठीक इसी तरह समकालीन काल में नयी कहानी और नयी कविता ने फिर परिवर्तन किये और साहित्य का यह काल भी इतिहास में अंकित हो गया। ऐसे में विचारणीय हो गया है कि आखिर साहित्य में इतना विभेद क्यों उत्पन्न होता है कि उसके आधार पर नये काल का ही सृजन करना पड़ जाता है? आखिर कारण क्या है, इस व्यापक परिवर्तन का?

तो इसका उत्तर होगा, साहित्य में ये परिवर्तन साहित्य सृजकों व पाठकों की सोच के मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के कारण होते हैं। ये मनोवैज्ञानिक परिवर्तन परिस्थितिजन्य होते हैं। जब कोई भी परिस्थिति मानवमन को अत्यंत प्रभावित करती है, तो इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव स्वाभाविक रूप से साहित्य पर दृष्टिगोचर होता ही है। इसका ही उदाहरण स्पष्ट रुप से बाल कहानियों में दिखाई देता है। बच्चों के चंचल मन और जिज्ञासाओं को प्रेरित करने का मुख्य साधन बाल साहित्य ही रहा है। 'पहले भी दादा–दादी, नाना–नानी और घर के अन्य बुजुर्ग बच्चों को कहानी सुनाते थे तो उसमें कोई सीख समाहित होती थी । पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियाँ भी कोई–न–कोई उपदेश लिए होती थीं । बाद में प्रेमचन्द की कहानियाँ भी आयीं जिनमें भी आदर्श निहित था।'[1]

फ्रांस के सुप्रसिद्ध विद्वान रूसो का कहना है कि बालक का मन शिक्षक की पाठ्य–पुस्तक है जिसे उसको पहले पृष्ठ से लेकर अंत तक भली–भांति अध्यापन करना चाहिए। दूसरी ओर आयु वर्ग एवं शिक्षा मनोविज्ञान पर विचार करते हुए मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर बल दिया है कि अवस्था के अनुसार बच्चों का अपना पृथक अस्तित्व होता है। वे स्वतंत्र होते हैं, उनके मनोविज्ञान को समझना इतना आसान नहीं है।

***सहायक प्राध्यापक, शा. महाविद्यालय महिदपुर, जिला–उज्जैन (म.प्र.)**

तभी तो खलील जिब्रान ने कहा है, ''तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो लेकिन विचार नहीं क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं। तुम उनका शरीर बन्द कर सकते हो लेकिन आत्मा नहीं क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है। उसे तुम नहीं देख सकते हो। सपनों में भी नहीं देख सकते । उन्हें अपनी तरह बनाने की इच्छा मत रखना क्योंकि जीवन पीछे की ओर नहीं जाता और न बीते हुए कल के साथ रुकता ही है।''[2] बच्चों के लिए लेखन आसान नहीं है। उनके मनोविज्ञान को समझे बिना बाल साहित्य लिखा ही नहीं जा सकता । तथ्य तो यह है कि बाल साहित्य का लक्ष्य बच्चों के मानसिक स्तर पर उतरकर उन्हें रोचक ढंग से नई जानकारियाँ देना है।

देश को आजादी प्राप्त होने के पश्चात देश व समाज की समस्याओं में भी परिवर्तन आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् १६५२ से हिन्दी कविता में 'नई कविता' नाम से एक काव्यधारा प्रचलित हुई इसका प्रभाव कहानी जगत पर भी पड़ा। इसके प्रभाव से 'नई कहानी' की परम्परा आरंभ हुई। इस दौर के सृजनकर्ताओं ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ को अपने परिवेशगत अनुभवों के माध्यम से स्थापित किया। नई कहानी या कविता एक ऐसा मंच है, जिस पर कथित मार्क्सवादी, मनोविज्ञानवादी, सामाजिक चेतनावादी तथा अन्य मानवीय दृष्टिवादी रचनाकार एक साथ अवतरित हुए। कहने के लिये ये भिन्न प्रकार की दृष्टि थी, जिसमें से एक मनोविज्ञानवादी थे, लेकिन हकीकत देखी जाये तो इनमें से कोई भी ऐसा नहीं था, जो मनोविज्ञानवादी न हो। कारण है बिना मनोवैज्ञानिक दृष्टि के तो साहित्य का सृजन ही नहीं हो सकता। कारण है यह भी अपनी भाषा–शैली आदि के द्वारा नाट्य में होने वाले आंगिक प्रदर्शन की तरह मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है।

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी में सर्वाधिक सशक्त आंदोलन 'नई कहानी' है। इसे समकालीन कहानियों का प्रारम्भ भी माना जा सकता है। इसका समय सन् १६५० से सन् १६६० का माना जाता है। नई कहानी की शुरुआत को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। नई कहानी शब्द का प्रयोग सबसे पहले दिसम्बर १६५७ में सम्पन्न साहित्यकार सम्मेलन में किया गया। सन् १६६२ में कहानी के परिसंवाद में कहानी के नयेपन पर चर्चा हुई, तभी से यह शब्द प्रचलित हो गया। डॉ हरिशचन्द्र वर्मा व डॉ रामनिवास गुप्त के अनुसार– ''पत्रिका 'कहानी' के प्रकाशन से नये ढंग की कहानियों का विकास हुआ और नई कविता के वजन पर इन कहानियों को 'नई कहानी' कहा जाने लगा।''[3]

देश की स्वतंत्रता के बाद नई पीढ़ी के कहानीकारों ने नई कहानी का सूत्रपात कर उसमें अनेक नये और मौलिक क्रांतिकारी परिवर्तन किये थे। इन नये कहानीकारों ने अपनी असह्य सामाजिक और वैयक्तिक घुटन तथा विवशता को अभिव्यक्ति दी। इनकी कहानियाँ स्वाधीन भारत के व्यक्ति, समाज और जीवन के विविध पक्षों को अपना प्रमुख विषय बनाकर नवीन उद्भावनाऐं प्रस्तुत कर रही हैं। यद्यपि नये कहानीकारों ने हिन्दी कहानी को नये आयाम प्रदान किये। भाव व विचार दोनों का ही उनमें विस्तार हुआ है, वस्तुतः यह अपनी पूर्व कहानी परम्परा का ही युगानुरुप विकास है। डॉ साधना शाह का भी लगभग यही मानना है– ''नई कहानी के अध्ययन के दौरान अनुभव हुआ कि नई कहानी में नवीनता तो है, पर पुराने से वह पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी है। यही इसकी सबसे बड़ी कमजोरी और सीमा है।''[4] राजनाथ शर्मा के अनुसार– ''नई कहानी का आंदोलन एक दल विशेष का आंदोलन था, जो अब मरण बेला की प्रतीक्षा ही नहीं कर रहा है, बल्कि मर चुका है।'' वास्तव में देखा जाए तो नई कहानी आजादी के पश्चात नई विचारधारा का उदय अर्थात वैचारिक क्रांति का दौर था। लेखक की नई दृष्टि का फल यह हुआ कि कहानी और नई कहानी के क्षेत्र में धड़ाधड़ नई कहानी की पत्र–पत्रिकाऐं प्रकाशन क्षेत्र में अवतरित हुईं और दिनों–दिन नई–से–नई विशुद्ध कहानी मासिक पत्रिकाऐं आने लगीं, जैसे– 'नई कहानियाँ', 'विनोद', 'निहारिका' और 'सारिका' आदि।

महानगर कस्बे और गाँव के विविध अनुभवों से सम्पन्न साहित्यकार अपने इस अनुभव का पाठकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हुए बिना किसी पूर्वाग्रह के इस धारा में शामिल थे। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में वर्तमान के प्रति गहरा क्षोभ तो है ही, किन्तु साथ ही उसमें भविष्य के प्रति गहरी आस्था भी है।

वह जीवन की जटिलताओं के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा है। जैसे इस दौर में कहानीकारों का चिंतन व उनकी कल्पना यथार्थवादी तो रही, लेकिन अत्यधिक व्यापक भी हो गई। कमलेश्वर ने नई और पुरानी कहानी में अन्तर को अत्यंत सुन्दर ढंग से निरुपित किया है। उनका कहना है, ''पुरानी कहानी में व्यक्ति शारीरिक रुप से आता था और वैचारिक रुप से कथाकार। नई कहानी में यह विचार उसी शरीर में अवस्थित बुद्धि से उपजता है, जिसे प्रस्तुत किया जाता है। तब विचारों का हाड़–माँस प्रदान किया जाता था, अब हाड़–माँस के इंसान के विचारों को प्रस्तुत किया जाता है।''[5] यहॉ जिस ''वैचारिक रूप'' से आलोचक का तात्पर्य है, वास्तव में वह मनोवैज्ञानिकता ही है, जिसके बिना उस साहित्य की प्रभावशीलता का विकास नहीं हो सकता।

इसी प्रकार आलोचक अमृतराय अपनी पुस्तक ''विचारधारा और साहित्य'' में इस काल की विशेषताऐं व्यक्त करते हुऐ लिखते हैं, ''आज का साहित्य मानवतावादी है, और वह रचनाकार के सामाजिक सरोकारों का लेखन है, वह सद्भावनाओं के उद्घोष का साहित्य नहीं रह गया है। सामाजिक न्याय का स्वर उसका आवश्यक अंग है। उत्तरोत्तर शक्तियों के विरूद्ध क्रोध और घृणा पायी जाती है। इस कारण उसे घृणा का प्रचार करने वाला साहित्य कह कर मानवतावादी साहित्य से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।''[6] यहाँ आलोचक ने आधुनिक काल के साहित्य को मानवतावादी साहित्य कहते हुए उसमें परिस्थितियों के प्रति क्रोध और घृणा की उपस्थिति दर्शायी है। यहॉ पर भी वास्तव में देखा जाऐ तो मनोवैज्ञानिकता का ही उल्लेख है। इस कारण कि क्रोध और घृणा जैसे मानवीय भाव भी वास्तव में मनोवैज्ञानिक भाव ही हैं। इस तरह जैसे–जैसे हिन्दी साहित्य के शिल्प विधान का विकास हो रहा था, उसकी मनोवैज्ञानिकता भी सतत रूप से बढती ही चली जा रही थी।

इस काल का परिवेश तेजी से बदला तथा राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में भी अनेक व्यापक परिवर्तन हुए। अतः इस दौर के हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता अपने समकालीन संसार के प्रति जागरुकता, समकालीन समाज तथा राजनीति के अन्तर्सूत्रों की खोज, समझ और उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति हो गई। आलोचक श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने उस दौर के साहित्य की विशेषता व्यक्त करते हुए कहा था– ''वास्तव में आधुनिक संदर्भो, नये परिवेश और नई समस्याओं का सबसे अधिक चित्रण कथा साहित्य में हुआ है। उपन्यास की भाँति ही कहानी में भी सामयिक कहानीकार परिवेश के बोध की संवेदना के स्तर पर जी कर, बाह्य और आंतरिक विसंगतियों, अंतर्विरोधों और कट्टरताओं को झेलते हुए नये मानवीय क्षितिज की खोज कर रहा है।''[7] यहॉ भी देखा जाऐ तो जिस मानवीय क्षितिज की बात आलोचक कर रहे हैं, वास्तव में वह कोई भौतिक वस्तु नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक क्षेत्र ही है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में स्थगित संवाद और संतुष्ट सम्बंध में आजादी पाने के बाद मध्यम वर्ग में उपजा लक्ष्य सिद्धि का भाव भी शामिल हो गया। इसमें मध्यमवर्ग के अन्य व्यापक सामाजिक क्षेत्रों में घटित हो रहा विलगाव भी दिखाई देता था। जिन युगों ने रामविलासजी को ''नवजागरण और लोकजागरण'' की संकल्पना गढ़ने के लिये प्रेरित किया, वे आधुनिकतावादियों के लिये प्रायः विस्मृति का क्षेत्र बन गये। स्मृति का संकोच सहानुभूति के संकोच का ही एक अनिवार्य परिणाम था। यह अभिजन के दृष्टिकोण और गुरुत्व–केन्द्र में आया एक ऐतिहासिक विचलन था, जिसमें एकजुटता के भाव का दुर्बल होना लगभग अनिवार्य था। आजादी के बाद के इस परिदृश्य को अगर आजादी पूर्व के 19वीं शताब्दी के उपनिवेशीकरण के परिदृश्य के सामने खड़ा करें तो एक व्यंग्य पैदा होता है। इस युग के आधुनिकतावादी आलोचकों का लेखन यह बताता है कि इन पर लम्बे समय से चली आ रही 'साहित्यक परम्परा' की कोई सर्वमान्य पुर्नव्याख्या करने का आन्तरिक दबाव अचानक बहुत कम हो गया। नई आधुनिकतावादी प्रवृत्ति अतीत के विषय में कोई बड़ा विमर्श जारी नहीं कर पा रही थी। कारण था, आधुनिकतावादी आलोचक 'अतीत की वर्तमानता' को तो स्वीकार कर रहे थे, लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अतीत के मूल्यांकन के लिये उनके पास मापदंडों का लगभग अभाव सा था। यहाँ तक कि उन्होंने पुराने निकषों के आधार पर आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन को ही नकार दिया। लक्ष्मीकांत वर्मा ने लिखा है, ''कुछ लोग यह मानते हैं कि यदि प्राचीन निकष से आधुनिक साहित्य का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, तो भी कोई न कोई प्रतिमान ऐसा होना चाहिए

जिससे बाल्मीकि से लेकर आज तक की कविता का मूल्यांकन किया जा सके। यह प्रश्न देखने में जितना सरल लगता है, उतना है नहीं। यह कभी नहीं रहा क्योंकि आज का जो प्रतिमान है, वह आज के सन्दर्भ में आज की अनुभूति और अभिव्यक्ति को समझने के लिये ही है। वह प्रतिमान बाल्मीकि पर आरोपित करके हम बाल्मीकि के साथ अन्याय करेंगे, जो हठवादी विचारक नये साहित्य के मूल्यांकन में प्राचीन निकष को प्रस्तुत करके करते हैं।''[8]

अतः निष्कर्ष रूप में देखा जाऐ तो साहित्य हमेशा ही समसामयिक घटनाओं, समस्याओं व परम्पराओं से प्रभावित रहा है। साहित्य में इनके प्रभाव की अभिव्यक्ति वास्तव में इनकी मनोवैज्ञानिकता ही है। यही कारण है कि चाहे सुनामी जैसी प्राकृतिक विपदा हो या भूकंप जैसी त्रासदी अथवा कोरोना जैसी विश्वव्यापी महामारी ही क्यों न हो, साहित्य में इनका प्रभाव हमेशा दृष्टिगोचर होता रहा है।9 यहॉ यह प्रश्न भी साहित्य जगत में उठता रहा है कि क्या आधुनिक साहित्य प्रकृति और सकारात्मकता के चित्रण से दूर होकर इन विपदाओं से ही प्रभावित होकर कहीं नकारात्मकता की ओर तो नहीं बढ रहा है? तो इसका उत्तर मेरे विचार में तो नकारात्कता नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिकता ही है। इन समसामयिक घटनाक्रमों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव इतना अधिक होता है कि साहित्य इनसे सर्वाधिक रूप से प्रभावित हुऐ बिना नहीं रहता। यही कारण है कि अन्य स्थायी सकारात्मकता इनके सामने प्रभावी नहीं रह पाती।

सन्दर्भ–सूची :–

1. वीरेन्द्र यादव, कृतिका, पृ.151।
2. प्रेमचंद, मानसरोवर– कहानी ईदगाह।
3. डॉ हरिशचन्द्र वर्मा व डॉ रामनिवास गुप्त, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 597।
4. डॉ साधना शाह, हिन्दी कहानी : संरचना और संवेदना, पृष्ठ 7।
5. कमलेश्वर, ''खोई हुई दिशाऐं'', किताब घर प्रकाशन, भूमिका से।
6. अमृतराय, 'विचारधारा और साहित्य', पृ.1।
7. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजपाल एण्ड संस, पृष्ठ – 98।
8. लक्ष्मीकांत वर्मा, 'नये प्रतिमान पुराने निकष', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1966, पृ.8।
9. स्व अध्ययन।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रकृति

डॉ. मीनाक्षी गुप्ता*

आधुनिक युग वैज्ञानिकता का युग है, जहाँ मनुष्य, मनुष्य से अधिक विज्ञान पर भरोसा करता है। मनुष्य भोग विलास में इतना अंधा हो गया कि उसने दुनिया के विकास के नाम पर लगातार उसका दोहन किया है। इस बर्बादी में सबसे अधिक नुकसान उसने प्रकृति के साथ किया है। मनुष्य जीवन में आगे बढ़ने के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए वर्तमान में तैयार है, इसी हद के कारण मनुष्य सारी सुख–सुविधाओं के बावजूद जीवन में अकेला होता जा रहा है।

प्रत्येक युग में समयानुसार प्रकृति के सूत्र मिलते हैं। 'जोई पिंडे सोई ब्रह्मांडे' जैसी सूक्तियों से ही साहित्य का उदय होता है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माण्ड के निर्माण में जितने भी तत्त्व हैं वे ही हमारे शरीर के तत्त्व भी हैं और यदि ब्रह्माण्ड के इन कारकों में विकृति उत्पन्न होती है तो स्वाभाविक रूप से वही विकृति हमारे शरीर में भी उत्पन्न होगी। रामायण और रामचरितमानस का अरण्यकांड हमें वन्य संस्कृति से जोड़ता है। राम का चरित्र इसका प्रमाण है। अरण्यकाण्ड में राम और सीता का व्यवहार हमें प्रकृति की ओर उन्मुख करता है। सीता हरण के प्रसंग से इसकी पुष्टि होती है, जब राम विलाप करते हुए वन की लताओं, वृक्षों, पशुओं, जीव–जंतुओं आदि से बहुत आत्मीय भाव से सवाल करते हैं–

"हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता।।
लछिमन समुझाए बहु भाँति। पूछत चले लता तरु पाँती।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।"[1]

आधुनिक काल में भी प्रकृति के सौंदर्य और उसके विनाश होते रूप का चित्रण साहित्य में रहा है। यह धरती सम्पूर्ण मनुष्य की जरूरतों के लिए काफ़ी है। लेकिन लालच और विकास की अंधी प्रतिस्पर्धा मनुष्य को संवेदनहीन बना रही है और इसी लालच का फल है कि आज हम पर्यावरण के इस विकराल संकट से जूझ रहे हैं क्योंकि "धरती के पास इतना है कि सब की जरूरतें पूरी कर सके, पर इतना नहीं कि एक आदमी के लालच को संतुष्ट कर सके।"[2] पर्यवारण के विनाश का आरंभ इस कलयुग की देन है। कलयुग का अर्थ मशीनीकरण और तकनीक की दुनिया से है, जिसने विकास के नाम पर पर्यावरण का सिर्फ दोहन किया है। इस विज्ञान का ही प्रभाव है कि परमाणु जैसे विनाशकारी बम का अविष्कार भी मनुष्य ने कर लिया। यह परमाणु कितना विनाशकारी है, इसका प्रमाण नागासाकी और हिरोशिमा हैं। अगर फिर से ऐसे विश्व युद्ध हुए और उसमें इन परमाणु बमों का इस्तेमाल हुआ तो यह सम्पूर्ण सृष्टि समाप्त हो जाएगी– "पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी / शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्ठग्रस्त / ... गेहूँ की बालों में सर्प फुफकारेंगे / नदियों में बह–बह कर आयेगी पिघली आग।"[3]

केदारनाथ सिंह 'तीसरे सप्तक' के एवं समकालीन कविता के महान कवि है। उनकी कविता ग्राम्य जीवन और उसके अनगिनत अनछुए पहलुओं को समेटते हुए आगे बढ़ती है और हमें यह बताती है कि प्रकृ ति का जीवन में क्या महत्त्व है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में कहीं–कहीं नाटकीय तत्वों एवं स्थितियों का प्रक्षेपण हुआ है। इनकी कविताओं को समझने के लिए पाठक में धैर्य की आवश्यकता होनी चाहिए क्योंकि अधिकांश कवितायें इतनी गंभीर हैं कि जब उन्हें कई बार पढ़ो, तब उसका अर्थ समझ आता है। 'तीसरा सप्तक' के हवाले से यह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर केदारनाथ सिंह ने व्यवस्थित लेखन 1950 से आरंभ किया। उनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं, 'अभी बिल्कुल अभी', 'जमीन पक रही है', 'यहाँ से देखो', 'बाघ', 'अकाल में सारस', 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ', 'तालस्ताय और साइकिल', 'सृष्टि पर पहरा', आदि हैं। केदारनाथ सिंह की कविताओं के संदर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

***एसोसिएट प्रोफेसर, श्री अरबिंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली–110092।**

लिखते हैं, "'मैं' की चेतना कवि की कविताओं को आत्मपरक बनाती है। वह मनुष्य की नियति को, उसकी पीड़ा को, समय के दबाव को अपने भोग के स्तर पर निजी बनाकर व्यक्त करता है। आशा, आकांक्षा, प्यास, अतृप्ति, बेचैनी, अकेलेपन की उदासी इस कवि में कहीं बहुत गहरी है।"[4]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रकृति का आलंबन अनेक भाव रहे हैं। केदारनाथ सिंह ने भले ही अपना ज्यादा जीवन शहर में व्यतीत किया हो पर उनका ग्राम्य प्रेम कभी खत्म नहीं होता, यही कारण है कि उनकी कविताओं में विशेष रूप से ग्राम्य प्रकृति का रूप देखने को मिलता है। वे गाँव से शहर की ओर प्रस्थान करते हैं और फिर शहर से गाँव की ओर, पर कहीं भी उनमें अतीतजीवी ठहराव नहीं दिखाई देता। इनकी कविताओं में गाँव की प्राकृतिक आभा की अनेक छवियाँ दिखाई देती हैं। इस संबंध में केदारनाथ सिंह लिखते हैं— "मैं गाँव का आदमी हूँ और दिल्ली में रहते हुए भी एक क्षण के लिए भी नहीं भूलता कि मैं गाँव का हूँ। यह गाँव का होना कोई मुहावरा नहीं है, बल्कि इसके विपरीत मेरे जीवन की एक गहरी लगाव भरी वास्तविकता है, जिसे मैं अनेक स्तरों पर जीता हूँ। साल के कम से कम डेढ़–दो महीने मैं गाँव में गुज़ारता हूँ और वहाँ के सुख–दुःख में हिस्सा लेता हूँ। दरअसल मुझे लगता है कि मेरे भीतर एक सहज किसान के लगाव काम करते हैं और यह अकारण नहीं है कि उससे जुड़े हुए अनेक संकेत शायद मेरी रचना में भी ढूँढे जा सकते हैं। इसके साथ ही एक और बात मैं महसूस करता हूँ और वह यह कि हिंदी कविता की अपनी परंपरा शुरू से ही गाँव से जुड़ी रही है। मैं आज की कविता को जब अत्यधिक नागरिक होते देखता हूँ तो मुझे कई बार अपने भीतर एक डर पैदा होता है कि कहीं वह अपना जातीय स्वरूप खो न दे। यह तय है कि आज हम उस तरह गाँव की तरफ लौट नहीं सकते, जैसे मध्ययुग के कवि कर सकते थे। पर यह मुझे बराबर लगता है कि गाँव की चेतना और आधुनिक जीवन की वास्तविकता के बीच एक संतुलनपूर्ण तनाव समकालीन हिंदी कवि के लिए ज़रूरी है। मेरी कोशिश उसी दिशा में है।"[5]

मानव एवं प्रकृति का संबंध चिर काल से रहा है, जिसके सान्निध्य में रहकर उसने जीवन–यापन करना सीखा। विभिन्न कलाओं में प्रकृति को विशेष स्थान दिया गया। साहित्य में प्रकृति के प्रभाव को विशेष रूप में देखा जा सकता है। प्राचीन काल से लेकर छायावाद तक प्रकृति, कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक रही है। जिसके प्रभाव को हम समकालीन कविता तक देखते है। भौतिकता का प्रभाव गाँवों की अपेक्षा शहरों पर अधिक हुआ। जिस दौर में केदारनाथ सिंह सर्जन में रत थे उस समय तक गाँव का आदमी प्रकृति के बहुत करीब था। लगभग गाँव की सारी जरुरतें प्रकृति से पूरी हो जाती थी। केदारनाथ सिंह गाँव के जीवन से पूरी तरह जुड़े थे, जैसा कि उन्होंने स्वीकार भी किया है कि दिल्ली जैसे महानगर में रहते हुए भी वे गाँव को नहीं भुला पाये है। यही कारण है कि केदारनाथ सिंह की कविताओं को लोक गंध का तत्व विशिष्ट बनाता है। केदारनाथ सिंह 'तीसरा सप्तक' में लिखते हैं "मानव संस्कृति के विकास में कवि का योग दो प्रकार से होता है— पहला, नवीन परिस्थितियों के तल में अंतःसलिला की तरह बहती हुई अनुभूति लय के आविष्कार के रूप में तथा अछूते बिंबों की कलात्मक योजना के रूप में।"[6]

केदारनाथ सिंह के जीवन में गाँव के नदी–तालाब, बाग, जंगल, पशु–पक्षी आदि के क्रिया–कलाप बसे हुए है, जिन्हें वो अपनी कविता का रूप देते हैं। जो कि विभिन्न बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रकृति का अनूठा चित्रण है, गेयता का गुण होने के कारण इनकी कविता उस समय काफी लोकप्रिय हुई। केदारनाथ सिंह ने कविता की शुरुआत गीतों के माध्यम से की थी। उनकी अनेक कविताएं जो 'तीसरे सप्तक' में प्रकाशित हुई, वह प्रकृति के विशिष्ट रूप को हमसे रूबरू करवाती है। 'पतझड़ की एक शाम' कविता का एक अंश दृष्टव्य हैं—

"सभी ओर से/अन्तरतम के किसी कोण पर/झुका हुआ–सा/सुनता प्रतिपल/एक समुद्री दस्तक/मन की पर्त–पर्त पर/धीमें–धीमें।"[7]

केदारनाथ सिंह प्रकृति के उन मुद्दों पर कविताएँ लिखते हैं, जो वर्तमान की सबसे बड़ी समस्या बन कर हमारे सामने मौजूद है। केदारनाथ सिंह प्रकृति को पूंजीवाद से जोड़ते है और पूंजीवाद की जकड़न से कैसे प्रकृति की भिन्न–भिन्न चीजे हमसे दूर होती जा रही हैं, उसे बेहद संवेदनात्मक ढंग से दिखाने का

काम किया है। अपनी कविता में वो पानी की समस्या को दिखाने का काम बेहद ईमानदारी से करते हैं। पानी जो की प्रकृति से हमें आसानी से उपलब्ध है, लोग अब उसके लिए भी मोहताज होते जा रहे हैं, लेकिन यही पानी बाजारों में आसानी से मिल रहा है। केदारनाथ सिंह अपनी कविता में इस समस्या को दिखाते हैं–

"पर यहाँ पृथ्वी पर मैं,/यानि आपका मुंहलगा पानी/अब दुर्लभ होने के कगार तक/पहुँच चुका हूं/पर चिंता की कोई बात नहीं/यह बाज़ारों का समय है,/और वहाँ किसी रहस्यमय स्रोत से मैं हमेशा मौजूद हूं।"[8]

साहित्य में प्रातःकाल और सायंकाल की प्रकृति का बेहद सुंदर और अनेक प्रकार का चित्रण देखने को मिलता हैं, लेकिन केदारनाथ सिंह, पंत की तरह प्रकृति को जीते हैं। अपनी कविताओं में केदारनाथ सिंह प्रातः और संध्या का ऐसा वर्णन करते हैं कि हमारे सामने अपने आप इसका दृश्य बिंबित हो जाता है। उनकी कविता में धूप को विविध वर्णी रंगों में प्रस्तुत किया है। केदारनाथ सिंह 'सूर्यास्त' कविता में प्रातः कालीन सौंदर्य का बेहद मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते है–

"दिन ढलने के बाद/लाल, भूरी/हरी नीली/पीत,/संख्यातीत/फरफराती/धूप की उल्टी पताकाएं।"[9]

इसके साथ ही सायंकाल का अद्‌भुत बिम्ब हमारे सामने एक कविता के माध्यम से केदारनाथ सिंह प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति का सजीव चित्रण उनकी इस कविता 'पपीहा दिन' से देख सकते हैं–

"हर डगर बरबस/मँहक उठेगी। /धूल, पत्तों, अंधड़ों में/ये तुम्हें भयकाएंगे/दौड़ायेंगे/छिप जाएँगे/इनका ठिकाना क्या/यहाँ बैठे, वहाँ गाया,/उधर जाकर छा गए/ये पपीहा – दिन आ गए है।"[10]

प्रकृति को नजदीक से निहारती उनकी एक और रचना है 'बादल ओ'। इस कविता में कवि ने एक ऐन्द्रिय बिम्ब प्रस्तुत किया है। कवि ने रूप–विधान, वर्ण–चित्रण, एवं उसकी गन्ध को चित्रित करने का पूरा प्रयास किया है। कवि कहता है–

"ओ सुनो रंगवर्षी बादल/ओ सुनो गंधवर्षा बादल/हम तुम्हें माँगते है। /हम अधजन में धानों के बच्चे/तुम्हें माँगते है।"[11]

केदारनाथ सिंह ने इसी तरह प्रकृति के विभिन्न रूपों का बेहद सुंदर चित्रण अपनी कवितों में किया है। उनकी सभी कविताएं न केवल लोकजीवन एवं प्रकृति– चित्रण को ही प्रस्तुत करती है, बल्कि इनकी धुनें भी प्रायः लोक गीतों वाली है। ऐसे गीतों में ग्राम जीवन और ग्राम–प्रकृति के नए और तीक्ष्ण चित्र अंकित किए गए हैं। पतझड़ जैसी शाम का भी केदारनाथ सिंह ने अनूठा प्रयोग किया है

"वह पतझड़ जैसी एक शाम थी/मैं चला जा रहा था अकेला/कि अचानक दृष्टि पड़ी/कांटों से लदा वह खड़ा है उदास/सड़क के किनारे/बबूल है.../मैंने कांटों से पहचाना/और उसे देखकर ऐसा कुछ हुआ/कि रख दिया प्रस्ताव/चलो, कनॉट प्लेस चलें।"[12]

इसी तरह केदारनाथ सिंह 'बिना नाम की नदी', 'सूर्य', 'दोपहर', 'बारिश', 'सूर्यास्त', 'बसन्त', 'शहर में रात', आदि कविताओं में प्रकृति के विभिन्न रूपों को आधार बना कर एकदम जीवंत रूप से उसका चित्रण करते है। जिनमें कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया है, साथ ही प्रकृति के मनोरम दृश्य भी दर्शाए गए हैं। 'तीसरा सप्तक' एवं 'अभी बिलकुल अभी' संग्रहों की कविताओं में प्रकृति निरन्तर विद्यमान है। अपनी इन रचनाओं में वे प्रकृति सौंदर्य के माध्यम से किसी सांकेतिक अर्थ की तलाश करते प्रतीत होते हैं। परिवेश और जमीन की गंध एवं धूल–मिट्टी, खेत– खलिहान, गाँव और गाँव से जुड़े तमाम स्मृति बिम्बों को इन्होंने उसी रूप में चित्रित किया है –

"मेह बरस कर खुल चुका था/खेत जुतने को तैयार थे/एक टूटा हुआ हल पेड़ पर पड़ा था/ और एक चिड़िया बार–बार–बार–बार/उसे अपनी चोंच से/उठाने की कोशिश कर रही थी।"[13]

केदारनाथ सिंह प्रकृति के सुंदर चित्रण के साथ साथ मानव लालसा के कारण प्रकृति को जो नुकसान हुआ है उसका चित्रण भी वो अपनी कविताओं में करते हैं। मनुष्य ने अपने लालच की पूर्ति के लिए सबसे अधिक प्रकृति का नुकसान किया है और अपने मन अनुसार हरे भरे पौधों को काट कर वहाँ विकास के नाम पर बड़े–बड़े मॉल और कारखाने बनवा रहा है। जिस कारण प्रकृति का संतुलन दिन प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है और अब जहाँ हरे भरे जंगल हुआ करते थे वहाँ कारखाने, मॉल, बंजर जमीन हो गई। केदारनाथ सिंह लिखते हैं कि– "भयानक सूखा है/पक्षी छोड़कर चले गए हैं/पेड़ों को/बिलो को छोड़कर चले गए हैं चीटें–चीटियाँ।"[14]

केदारनाथ सिंह मनुष्यता के कवि हैं, उनकी कविताओं में इंसानियत शुरू से लेकर अंत तक जिंदा है। जिस तरह वो मनुष्य की स्वतंत्रता की बात करते हैं, ठीक उसी तरह प्रकृति की स्वतंत्रता की बात करते हैं। और 'जाने दो' कविता में वो प्रकृति की स्वतंत्रता की बात करते हैं –

"माटी को हक दो/वह भीजे, सरसे, फूटे, अंखुआए,/इन मेड़ों से लेकर /उन मेड़ों तक छाए,/और कभी न हारे,(यदि हारे)/तब भी उसके माथे पर हिले,/और हिले/और उठती ही जाए /यह दूब की पताका–/नए मानव के लिए।"

केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं के माध्यम से मानव के कारण प्रकृति के संकट से होने वाले नुकसान से समाज को आगाह करते है और सही समय पर समाज को सतर्क हो जाने का आग्रह भी करते हैं। तभी तो केदारनाथ सिंह अपनी कविता के संदर्भ में कहते भी हैं कि, 'यह कविता नहीं, आग की ओर इशारा है'। इंसान को इस आग के इशारे को समझाना होगा नहीं तो एक दिन या पूरी पृथ्वी बंजर हो जायेगी, सारे झरने सूख जाएंगे, सारी हरियाली गायब हो जायेगी, रह जायेगा तो बस धुआं और धुआं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. तुलसीदास – रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2004, पृष्ठ – 606।
2. महात्मा गाँधी – हिंद स्वराज, हिंदी अकादमी, दिल्ली. 2009, पृष्ठ – 45।
3. धर्मवीर भारती – अंधायुग, किताबमहल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965, पृष्ठ–75।
4. समकालीन हिंदी कविता – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृष्ठ – 159।
5. मेरे समय के शब्द – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ – 182।
6. तीसरा सप्तक– अज्ञेय, पृष्ठ – 80।
7. अभी बिल्कुल अभी – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ – 10।
8. तालस्ताय और साइकिल – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ – 9।
9. अभी बिल्कुल अभी – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ – 59।
10. अभी बिल्कुल अभी – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ– 75।
11. तीसरा सप्तक – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ – 141।
12. इण्डिया टूडे, साहित्य वार्षिक पत्रिका, पृष्ठ – 132।
13. यहाँ से देखों – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ – 48।
14. आकाल में सारस – केदारनाथ सिंह, पृष्ठ – 20।

भक्ति, संस्कति और दरिया साहब का सांस्कृतिक बोध

धनंजय कुमार*

सारांश : दरियासाहब असाधारण प्रतिभा के कवि थे। उन्होंने प्रायः 15 हजार पद्यों की रचना की। इन पदों में छोटी–छोटी कुल 37 हजार से अधिक पंक्तियाँ है। इनमें भिन्न–भिन्न अनेक छंदो का व्यवहार किया गया है। कविताओं की मौलिकता और काव्य प्रतिभा के आधार पर वे हिन्दी के अग्रगण्य कवियों में शामिल हो सकते हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों के द्वारा दरिया साहब एवं उनके ग्रंथ पर पर्याप्त ढंग से विचार नहीं किया गया है। "शिव सिंह सरोज," गियर्सन साहब के मॉडर्न वर्नाकुलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान, रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य का इतिहास और हरिऔध के ओरिजन एण्ड ग्रोथ ऑफ हिन्दी लैंग्वेज एण्ड इट्स लिटरेचर तथा इतिहास संबंधी ग्रन्थों में दरिया साहब का नाम तक नहीं मिलता है। श्री राम कुमार वर्मा के "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" में दरिया साहब की चर्चा आई है, परन्तु यह संक्षिप्त चर्चा, बेलवेडियर प्रेस से छपी दो पुस्तकें अथवा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा मुद्रित खोज रिपोर्टों में छपी हुयी कुछ संक्षिप्त सूचनाओं पर ही आधारित प्रतीत होती है। यही बात दरिया साहब के संबंध में मिलने वाली अन्यत्र सूचनाओं अथवा चर्चाओं के विषय में लागू है; यथा– मिश्रबंधुविनोद, गणेश प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी के कवि और काव्य तथा कल्याण का संताक आदि। ग्रन्थों के मुद्रित संस्करणों का अपेक्षाकृत अभाव, हस्तलिखित ग्रन्थों की गोपनीयता तथा बिहार में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज की व्याख्या न होना – ये कतिपय ऐसे कारण है, जिनके फलस्वरूप हम महान संत कवि दरिया के विषय में अनभिज्ञ रहे हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन तथा डा0 बड़थवाल जैसे विद्वानों ने क्रमशः भारतीय मध्ययुगेर साधनार धारा तथा निर्गुण स्कूल ऑफ हिन्दी पोयट्री नामक पुस्तकों में दरिया साहब का संक्षिप्त विवरण दिया है। परन्तु हस्तलिखित ग्रन्थों की मूल निधि के अभाव में वे संत कवि दरिया के जन सिद्धान्तों की उपयुक्त व्याख्या करने अथवा उनके जीवन और उनकी कृतियों का विशद विवेचन करने में समर्थ नही हो सके।

प्रस्तावना : बिहार की सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत के समृद्ध ताने–बाने में एक प्रमुख व्यक्ति, दरिया साहब अपनी मार्मिक कविताओं के लिए प्रसिद्ध हैं, जो मानवीय भावनाओं और सामाजिक मुद्दों की जटिलताओं को समेटे हुए हैं। विविध परंपराओं से सराबोर एक क्षेत्र से उभरकर, उनकी रचनाएँ स्थानीय रीति–रिवाजों और व्यापक दार्शनिक विषयों के बीच परस्पर क्रिया को दर्शाती हैं। दरिया साहब की कविताएँ बिहार के सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य को आईने की तरह पेश करती हैं, जो अक्सर प्रेम, निराशा, सामाजिक न्याय और पहचान की खोज के विषयों को संबोधित करती हैं। शास्त्रीय रूपों के साथ क्षेत्रीय बोलियों का उनका अनूठा मिश्रण क्षेत्र की भाषाई विविधता को दर्शाता है, जिससे उनके दर्शकों के साथ गहरा जुड़ाव होता है। इसके अलावा, सामूहिक अनुभवों के साथ व्यक्तिगत आख्यानों को बुनने की उनकी क्षमता उनके काम की सार्वभौमिक प्रकृति को दर्शाती है, जिससे यह विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों के साथ प्रतिध्वनित होता है। ज्वलंत कल्पना और विचारोत्तेजक भाषा के माध्यम से, दरिया साहब न केवल अपने समुदाय की मौखिक परंपराओं को संरक्षित करते हैं, बल्कि सामाजिक मानदंडों की आलोचना भी करते हैं, जो अंततः मानव अनुभव पर एक व्यापक प्रवचन में योगदान देता है। उनकी कविता पाठकों को अपने जीवन पर चिंतन करने के लिए आमंत्रित करती है, साथ ही उनमें अपनेपन और सांस्कृतिक गौरव की भावना को बढ़ावा देती है, तथा बिहार और उसके बाहर के साहित्यिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण आवाज के रूप में उनकी विरासत को मजबूत करती है।[1]

*** शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।**

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ : दरिया साहब की कविता का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ बिहार की समृद्ध और विविध विरासत में गहराई से निहित है, जो सदियों से सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रभावों के संगम से आकार लेती रही है। शिक्षा और संस्कृति के केंद्र के रूप में अपने ऐतिहासिक महत्व के लिए जाना जाने वाला बिहार प्राचीन साम्राज्यों से लेकर आधुनिक आंदोलनों तक विभिन्न परंपराओं का संगम रहा है। इस क्षेत्र ने जाति समानता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के संघर्षों सहित महत्वपूर्ण सामाजिक उथल–पुथल देखी है, जो साहेब के काम को गहराई से प्रभावित करती है। उनकी कविता अक्सर हाशिए पर पड़े समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली सामाजिक–आर्थिक चुनौतियों को दर्शाती है, जिसमें अन्याय और लचीलेपन के विषयों को संबोधित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय लोककथाओं, मौखिक परंपराओं और आध्यात्मिक आख्यानों का प्रभाव उनकी कविताओं में स्पष्ट है, जो इस क्षेत्र के सांस्कृतिक पहचान से गहरे जुड़ाव को दर्शाता है। उनकी कविता में परंपरा और समकालीन मुद्दों का परस्पर संबंध न केवल मानवीय अनुभवों की कालातीत प्रकृति को उजागर करता है, बल्कि तेजी से बदलती दुनिया में सांस्कृतिक आख्यानों को संरक्षित करने के महत्व पर भी जोर देता है। इस संदर्भ में, दरिया साहब अपने समुदाय के सुख और संघर्ष दोनों के महत्वपूर्ण इतिहासकार के रूप में उभरते हैं, जो सामाजिक परिवर्तन की वकालत करते हुए अतीत और वर्तमान के बीच सेतु बनाने के लिए अपनी कला का उपयोग करते हैं।[2]

दरिया साहब की कविता में विषय : दरिया साहब की कविताओं में विषय समृद्ध और बहुआयामी हैं, जो बिहार में जीवन की जटिल वास्तविकताओं को दर्शाते हैं। एक प्रमुख विषय सामाजिक न्याय है, जहाँ वे जातिगत भेदभाव, गरीबी और हाशिए पर पड़े समुदायों की दुर्दशा जैसे मुद्दों को संबोधित करते हैं। इन सामाजिक मुद्दों की उनकी मार्मिक खोज गहराई से गूंजती है, जो अक्सर आम लोगों के संघर्षों और आकांक्षाओं को उजागर करती है। एक और महत्वपूर्ण विषय प्रेम है, जिसे न केवल रोमांटिक शब्दों में बल्कि मानवता और अपनी जड़ों से जुड़ाव की व्यापक अभिव्यक्ति के रूप में भी चित्रित किया गया है। उनकी कविताएँ अक्सर प्रेम की मधुर–कड़वी प्रकृति को पकड़ती हैं, व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वभौमिक भावनाओं के साथ मिलाती हैं। इसके अतिरिक्त, पहचान का विषय दृढ़ता से उभरता है, क्योंकि साहब परंपरा और आधुनिकता के बीच तनाव से जूझते हैं, तेजी से बदलते समाज के भीतर व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान को परिभाषित करने की कोशिश करते हैं। प्रकृति भी उनके काम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो मानवीय भावनाओं और अनुभवों के लिए पृष्ठभूमि का काम करती है, लोगों और उनके पर्यावरण के बीच अविभाज्य बंधन को दर्शाती है। विशद कल्पना और भावपूर्ण भाषा के माध्यम से, दरिया साहब इन विषयों को एक साथ बुनते हैं, एक ऐसा चित्रांकन तैयार करते हैं जो साझा मानवीय अनुभव को बयां करता है और बिहार की सांस्कृतिक बारीकियों पर जोर देता है। विषयों का यह अंतर्संबंध न केवल उनकी कविता को समृद्ध करता है बल्कि पाठकों को अपने जीवन और सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करने के लिए भी आमंत्रित करता है, जिससे उनका काम प्रासंगिक और कालातीत दोनों बन जाता है।[3]

भाषा और शैली : दरिया साहब की भाषा और शैली विशिष्ट विशेषताएं हैं जो उनकी कविता को अलग बनाती हैं, जो बिहार की समृद्ध भाषाई विरासत को दर्शाती हैं। वह अक्सर क्षेत्रीय बोलियों का एक अनूठा मिश्रण इस्तेमाल करते हैं, जिससे उनके काम में एक प्रामाणिक आवाज आती है जो उनके पाठकों के साथ गहराई से जुड़ती है। यह स्थानीय भाषा का दृष्टिकोण न केवल उनकी कविता को सुलभ बनाता है बल्कि बिहार में जीवन की रोजमर्रा की वास्तविकताओं को भी दर्शाता है, जो शास्त्रीय साहित्यिक रूपों और लोकप्रिय मौखिक परंपराओं के बीच की खाई को पाटता है। साहेब द्वारा विशद कल्पना और विचारोत्तेजक रूपकों का उपयोग उनके विषयों को जीवंत बनाता है, जिससे पाठक उन भावनाओं और अनुभवों की कल्पना कर सकते हैं जिन्हें वह व्यक्त करते हैं। उनकी शैली लयबद्ध लय और गीतात्मक प्रवाह की विशेषता है, जो उनके छंदों की संगीतमय गुणवत्ता को बढ़ाती है, जो पाठ और प्रदर्शन को आमंत्रित करती है – जो बिहारी काव्य परंपराओं की एक पहचान है। इसके अलावा, उनका मार्मिक और अक्सर आत्मनिरीक्षण करने वाला लहजा पाठकों के साथ एक गहरा भावनात्मक जुड़ाव पैदा करता है, जो उन्हें उनकी कहानियों के दिल में खींचता है। भाषा के अपने कुशल प्रयोग के माध्यम से, दरिया साहब न केवल सांस्कृतिक बारीकियों

को संरक्षित करते हैं, बल्कि सामाजिक मानदंडों की आलोचना भी करते हैं, ऐसी कविताएँ गढ़ते हैं जो चिंतनशील और परिवर्तनकारी दोनों हैं। उनकी भाषा और शैली में सुलभता और गहराई का यह मिश्रण सुनिश्चित करता है कि उनका काम पीढ़ियों तक प्रासंगिक बना रहे, जिससे वे भारतीय कविता के परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण आवाज बन गए।

आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रभाव : दरिया साहब की कविता आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रभावों से भरपूर है जो बिहार के विविध सांस्कृतिक और धार्मिक परिदृश्य को दर्शाती है। उनका काम अक्सर स्थानीय आध्यात्मिक परंपराओं से प्रेरित होता है, जिसमें हिंदू धर्म, सूफीवाद और लोक मान्यताओं के तत्व शामिल होते हैं, जो उन्हें एक सुसंगत कथा में बुनते हैं जो अर्थ और संबंध की खोज का पता लगाता है। आध्यात्मिक दर्शन का यह अंतर्संबंध उनके प्रेम, करुणा और सभी प्राणियों के परस्पर संबंध पर जोर देने में स्पष्ट है, जो व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों अनुभवों से मेल खाता है। साहेब का दार्शनिक दृष्टिकोण अस्तित्व के उनके चिंतन से भी आकार लेता है, जो अक्सर दुख, पहचान और मानवीय स्थिति की प्रकृति पर विचार करता है। वह रूपक भाषा के माध्यम से अस्तित्वगत प्रश्नों को संबोधित करते हैं, पाठकों को अपनी यात्रा और जीवन की बड़ी सच्चाइयों पर चिंतन करने के लिए आमंत्रित करते हैं। यह आध्यात्मिक आयाम न केवल प्रेरणा के स्रोत के रूप में कार्य करता है बल्कि सामाजिक अन्याय की उनकी आलोचना वह गहन सार्वभौमिक विषयों से जुड़ते हैं जो आत्मनिरीक्षण और गहन सत्य की खोज को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे उनका काम सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सीमाओं के पार प्रतिध्वनित होता है।

समकालीन संस्कृति में दरिया साहब की विरासत : समकालीन संस्कृति में दरिया साहब की विरासत गहन और स्थायी है, जो उन्हें बिहार और उसके बाहर के साहित्यिक और सामाजिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में स्थापित करती है। सामाजिक न्याय, प्रेम और पहचान के विषयों से समृद्ध उनकी कविता, लेखकों, कार्यकर्ताओं और कलाकारों की नई पीढ़ियों को प्रेरित करती रहती है, जो सामाजिक मुद्दों को संबोधित करना चाहते हैं। हाल के वर्षों में, उनके काम ने नए सिरे से ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि विद्वान और सांस्कृतिक आलोचक आज के सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के संदर्भ में उनके संदेशों की प्रासंगिकता का पता लगाते हैं। साहित्यिक उत्सवों, कविता पाठों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अक्सर उनकी कविताएँ शामिल होती हैं, जो उनकी अनूठी आवाज और उनके द्वारा समर्थित मौखिक परंपराओं का जश्न मनाती हैं। इसके अतिरिक्त, स्थानीय बोलियों और लोक कथाओं पर साहेब के जोर ने क्षेत्रीय भाषाओं और साहित्य को संरक्षित करने और बढ़ावा देने के लिए एक आंदोलन को जन्म दिया है यह एक सांस्कृतिक लोकाचार का प्रतीक है जो मानवीय संबंध, सहानुभूति और कला की परिवर्तनकारी शक्ति को बढ़ावा देता है, तथा यह सुनिश्चित करता है कि उसका प्रभाव आने वाली पीढ़ियों तक महसूस किया जाएगा।[4]

सन्दर्भ–सूची :–

1. अली, एन. (2016). हल्लाज से हीर तकरू काव्य ज्ञान और मुस्लिम परंपरा। जर्नल ऑफ नैरेटिव पॉलिटिक्स, 3(1), 2.
2. बॉमिस्टर, आर. एफ., और मुरावेन, एम. (1996)। सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भ के अनुकूलन के रूप में पहचान। जर्नल ऑफ एडोलसेंस, 19(5), 405–416।
3. अहमर, वाई. (1999)। आधुनिक उर्दू कवि। एडम पब्लिशर्स।
4. फाजिला, वी. (2007)। लंबा विभाजन और आधुनिकता का निर्माण। पेंगुइन बुक्स इंडिया।

जाति-व्यवस्था की समझ और सरोकार
एक सैद्धांतिक अनुशीलन

डॉ. जितेन्द्र कुमार गिरि*

आर्यों–अनार्यों की संस्कर संस्कृति का अभिज्ञान कराने वाले वैदिक काल से लेकर पाश्चात्य–संस्कृति के प्रभाव वाले वर्तमान काल तक जाति–व्यवस्था प्रत्येक कालखण्ड एवं प्रत्येक समाज में अल्पाधिक परिवर्तनों के साथ विद्यमान रही है तथा इसके अत्यधिक सामाजिक दुष्प्रभावों के कारण ही इसे सदैव समाज के लिए कए कुष्ठ रोग माना जाता रहा है। चाहे शक, हूण, चौहान, चंदेल आदि से शासित इतिहास का प्राचीन कालखण्ड रहा हो या चाहे मुस्लिम आक्रमणकारियों के आधिपत्य वाला मध्यकाल अथवा औपनिवेशिक भारत का जागरण काल हो या फिर लोकतंत्रात्मक व्यवस्था युक्त संसदीय शासन का वर्तमान काल– सभी में जाति–व्यवस्था के विकृत प्रभावों ने समाज के विकास को अवरूद्ध किया है। दरअसल भारतीय समाज में प्रचलित जाति–प्रथा में समाज का जो वर्गीय या जातिगत विभाजन मिलता है वह बहुत ही जटिल, अतार्किक एवं व्यक्तिगत स्वार्थों पर आधारित है। इसके अतिरिक्त इसमें व्यक्तियों के कार्य निर्धारण में जो असंख्य तरह की असंगतियाँ अंतर्भुक्त होती हैं उनसे समाज और परिवार में अस्पृश्यता, अशिक्षा, गरीबी, शोषण, बेकारी आदि सामाजिक कुरीतियों को बढ़ावा मिलता है। दरअसल ''भारत में जाति–व्यवस्था जितनी जटिल है, सुव्यवस्थित और रूढ़ है, उसकी मिसाल विश्व के किसी भी भाग में कहीं नहीं मिलेगी। वस्तुतः जब हम गहराई से सोंचते हैं तो यही पाते हैं कि यह भारत में ही मिलती है, अन्यत्र नहीं।''[1] जाति–व्यवस्था को सदैव से ही एक सामाजिक बुराई के रूप में देखा जाता रहा है जिसकी भारतीय समाज में विद्यमानता अत्यंत प्राचीनकाल से ही रही है। यह केवल सामाजिक व्यवस्था को ही नहीं बल्कि मानव–जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पहलुओं को भी व्यापक रूप से प्रभावित करती है। जाति–व्यवस्था के सामाजिक–राजनीतिक प्रभावों का आकलन केवल इसी से किया जा सकता है कि वर्तमान में यह न केवल समाज सुधार आन्दोलनों का आधार बन चुकी है अपितु वोट बैंक की भारतीय राजनीति इसी के आस–पास धूमती नजर आती है। यद्यपि अपनी उद्भावना से लेकर वर्तमान तक की सुदीर्घ यात्रा में जाति–व्यवस्था ने अपने स्वरूप में थोड़ा–बहुत परिवर्तन अवश्यक किया है, जिसमें छुआछूत जैसी घृणित रूढ़ियों–प्रथाओं को नियंत्रित कर लिया गया है लेकिन फिर भी आज भी कहीं–कहीं इसका प्राचीन स्वरूप सहजता से देखने को मिल जाता है विशेषकर –ग्रामीण समाज में। जाति–व्यवस्था के सामाजिक पक्ष को भलीभाँति समझने के लि इसके उद्भव संबंधी विभिन्न सिद्धांतों पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। हालांकि भारत का सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास इतना अधिक प्राचीन है कि इस व्यवस्था की उत्पत्ति के कोई ठोस प्रमाण का पता अभी तक नहीं चल पाया है लेकिन भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने अपने सूक्ष्म अध्ययन तथा सामाजिक अनुसंधान के उपरांत जाति–व्यवस्था संबंधी जो अवधारणाएँ दी हैं उनसे बहुत हद तक इस व्यवस्था की उत्पत्ति, स्वरूप, सामाजिक प्रभाव और परिणाम आदि के बारे में पता चल जाता है।

जाति–व्यवस्था के उद्भव व विकास संबंधी पहला सिद्धांत परम्परागत सिद्धांत के नाम से जाना जाता है जो कि वर्ण–व्यवस्था के उद्भव और विकास से भी जुड़ा है तथा जिसका आधार वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण व महाभारत आदि हिन्दू धर्म–ग्रन्थ और विभिन्न स्मृतियाँ हैं। इन धर्मग्रन्थों ने अलौकिक विश्वासों एवं धार्मिक मान्यताओं के आधार पर जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति को मान्यता प्रदान की है जिसके कारण ही इस सिद्धांत को 'परम्परागत सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार भारत में जातियों की उद्भावना वर्ण विभाजन से आरम्भ हुई। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से छत्रिय, जंघाओं से

***स्वतंत्र लेखक, विचारक एवं मीमांसक** *एवं पूर्व–शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल* ।

वैश्य तथा पैरों से शूद्र वर्ण की उत्पत्ति को वेदों ने अभिपुष्टि प्रदान की है। हिन्दू धर्म में मनुस्मृति पहला ऐसा ग्रंथ है जिसमें वर्णों की उत्पत्ति के साथ ही जातियों की उद्भावना पर भी प्रकाश डाला गया है जिसके अनुसार विभिन्न वर्ण के लोगों में से जिन लोगों ने अपने–अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं किया या फिर जिन्होंने अनुलोम विवाह के नियमों का उल्लंघन किया उनसे जन्म लेने वाली संकर वर्ण की संतानों में से एक ही वर्ण के भीतर अनेक उच्च और निम्न जातियों की उत्पत्ति हुई। जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति संबंधी दूसरा सिद्धांत प्रजातीय सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत को 'प्रजातीय भिन्नता' अथवा 'प्रजातीय संघर्ष का सिद्धांत' भी कहा जाता है जिसके अनुसार आज से बहुत समय पहले जब आर्य लोग फारस से भारत आये तब उनका यहां के मूल अधिवासी द्रविड़ों के साथ संघर्ष हुआ जिसमें आर्यों की विजय और द्रविड़ों की पराजय हुई। इस विजय के उपरांत आर्यों ने अनार्यों अर्थात द्रविड़ों के साथ दासों के समान व्यवहार करना शुरू कर दिया। आगत आर्यों में स्त्रियों की संख्या कम होने के कारण उन्होंने अनुलोम विवाह का नियम बनाया जिसके अनुसार श्रेष्ठ होने के कारण आर्य लोग द्रविड़ स्त्रियों के साथ विवाह कर सकते थे लेकिन द्रविड़ लोगों को आर्य स्त्रियों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करने की अनुमति नहीं थी। आर्यों की तरह ही समय–समय पर अनेक प्रजातीय समूहों ने भारत में प्रवेश करके मिश्रित रक्त संबंधों वाले अनेक समूहों को जन्म दिया, जिनसे अनेक जातियों का जन्म हुआ। जाति–व्यवस्था के प्रादुर्भाव संबंधी तीसरा सिद्धांत 'व्यावसायिक सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार जब यज्ञ एवं कर्मकांड आदि का काम बहुत जटिल हो गया तब इन्हें करने वाले व्यक्तियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त हो गया। ऐसे व्यक्तियों पर ब्राह्मणों का सामाजिक एकाधिकार था। इसके उपरांत शक्ति संपन्न लोगों ने शासन पर तथा व्यापार एवं पशुपालन करने वाले लोगों ने व्यवसाय पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया जिन्हें क्रमशः क्षत्रिय एवं वैश्य के नाम से जाना गया। अन्य लोगों के हिस्से में सामाजिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण कार्य आए। इन लोगों ने भी अपने कार्यों को उच्च एवं निम्न में विभाजित कर लिया जिससे उच्च और निम्न जातियों का जन्म हुआ।

जातीय विभाजन अथवा जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति संबंधी चौथे सिद्धांत को 'ब्राह्मणवादी सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है जिसके अनुसार भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का प्रचार–प्रसार ब्राह्मणों की स्वार्थी मानसिकता का परिणाम है। इस सिद्धांत के अनुसार द्रविड़ों पर विजय प्राप्त करने के बाद आर्यों ने उनके साथ केवल दासों जैसा व्यवहार करना ही नहीं शुरू किया बल्कि कर्मकांड आदि की पवित्रता के आधर पर स्वयं को भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नामक तीन वर्णों में विभाजित कर लिया। इन तीनों वर्णों में वैवाहिक संबंध स्थापित होते थे तथा इनमें से किसी के लिए कोई सामाजिक निषेध नहीं था। परन्तु कुछ समय पश्चात् एक इण्डों–आर्यन संस्कृति विकसित होने लगी जो ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए उन्हें विशेषाधिकार देने की पक्षधर थी। इसका फायदा उठाते हुए ब्राह्मणों ने अनुलोम विवाह के विधानों के साथ–साथ पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा का प्रचार–प्रसार करना शुरू कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप सर्वश्रेष्ठ या पवित्र जातियाँ अपने से निम्न या अपवित्र जातियों से विवाह, खान–पान, सम्पर्क आदि में प्रतिबंध लगाने लगी। इसी सैद्धांतिक प्रक्रिया के आधार पर उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक पवित्रता–अपवित्रता के नाम पर भारतीय समाज अनेक जातियों–उपजातियों में विभक्त हो गया। जाति–व्यवस्था के उद्भव संबंधी पाँचवां सिद्धांत 'धार्मिकता का सिद्धांत' है जिसके अनुसार भारत में जाति–व्यवस्था धर्म से संबंधित कर्मकांडों और विधानों के निवर्हन से अस्तिव में आई। धार्मिक कृत्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न मानव–समूहों की आवश्यकता होती है जिसमें मंत्रों का उच्चारण ब्राह्मण करता है जबकि फूल तोड़ने, पानी लाने, हवन कुण्ड बनाने तथा समिधा के लिए लकड़ी लाने, साफ–सफाई करने, हजामत बनाने तथा दूसरे अन्य कार्यों के लिए अलग–अलग व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। क्योंकि ये सभी कार्य एक समान महत्त्व के नहीं होते हैं तथा पवित्रता और अपवित्रता के आधार पर भी ये उच्च व निम्न कोटि के होते हैं इसलिए विभिन्न कृत्यों से संबंधित एक–दूसरे से भिन्न स्थिति रखने वाले यही समूह जातियों में परिवर्तित हो गये। जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति संबंधी छठा सिद्धांत 'उद्विकासीय सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है जिसके अनुसार भारत की जाति–व्यवस्था किसी एक दशा का परिणाम नहीं बल्कि अनेक

परिस्थितियों का सम्मिलित परिणाम है जो कि, अनेक अवस्थाओं से होती हुई वर्तमान दशा को प्राप्त हुई है। इस सिद्धांत के अनुसार आर्यों व अनार्यों के बीच होने वाले संघर्ष के बाद हुए व्यवसायों के वर्गीकरण के फलस्वरूप ही जाति व्यवस्था अस्तित्व में आई। भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था के उद्भव व विकास संबंधी उपर्युक्त सिद्धांतों के अतिरिक्त डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का सिद्धांत भी है जिसके अनुसार प्रत्येक समाज में वर्ग विभाजन अनिवार्य रूप से पाया जाता है, बल्कि विभिन्न वर्गों के सम्मिलन से ही समाज का निर्माण होता है। समाज में पाए जाने वाले यही वर्ग समय–सापेक्ष जातियों में परिवर्तित होते गये।

उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति संबंधी अनेक अवधारणाएँ प्रचलित हैं और सभी के पास इस विषय में अपने–अपने ठोस तर्क हैं। लेकिन एतद्विषयक इन सभी सिद्धांतों का सामान्यीकरण किया जाए तो जो निष्कर्ष प्राप्त होता है उसके अनुसार आर्यों और द्रविड़ों का संघर्ष तथा पराजित द्रविड़ों के साथ आर्यों द्वारा किया जाने वाला दासों जैसा व्यवहार ही जाति–प्रथा के उद्भव का मूल कहा जा सकता है। समाज में जैसे–जैसे पवित्रता–अपवित्रता की भावना सुदृढ़ होती गयी वैसे–वैसे लोग अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए स्वयं से नीची जातियाँ खोजने लगे। जाति के भीतर जाति का अनुसंधान सामाजिक श्रेष्ठता संबंधी इसी विचार धारा का प्रतिफलन था। यह तो रहा जाति–व्यवस्था के सामाजिक पक्ष का सैद्धांतिक अनुशीलन, अब इस व्यवस्था के व्यावहारिक पक्ष पर भी एक दृष्टिपात कर लेना आवश्यकता प्रतीत होता है। प्राचीनकाल से ही व्यक्ति और समाज की सामाजिक पहचान का आधार रही जाति–व्यवस्था का पहला विकृत प्रभाव समाज में कार्य–विभाजन पर पड़ा। कारण यह है कि जन्म आधारित होने के कारण इस व्यवस्था में व्यक्ति की योग्यता के स्थान पर उसके कुल या परिवार के व्यवसाय को महत्त्व दिया गया जिसके कारण योग्य होते हुए भी वह परम्परागत व्यवसाय करने को मजबूर हुआ।

जाति–कर्म की इस परम्परा को सामाजिक आदर्श एवं दैवीय निर्देश के रूप में प्रचारित–प्रसारित करने का परिणाम यह हुआ कि अशिक्षा, अज्ञानता, अभावग्रस्तता व डर आदि कारणों से समाज में न चाहते हुए भी कर्म विभाजन की इसी वंशानुगत परम्पर का निवर्हन होता रहा। ध्यातव्य है कि जातियों के बीच कार्य विभाजन में समाज के कर्णधारों ने कम श्रम वाले, लाभदायक और सामाजिक दृष्टि से सम्मानित कार्यों को स्वयं के लिए संरक्षित कर लिया जिसके परिणामस्वरूप पूजा–पाठ, अध्ययन–अध्यापन, मंत्रोच्चार, रक्षा तथा व्यापार आदि कार्य उच्च जातियों के हिस्से में चले गए। जबकि जो कार्य अत्यधिक श्रमसाध्य थे तथा जिन्हें सामाजिक दृष्ठि से हेय माना जाता था वे कार्य निम्न जातियों को सौंप दिए गए, जिनमें खेती करना, शादी–विवाह में ढोल–नगाड़े बजाना, मृतक पशुओं की खाल निकालना, कपड़े धोना, घर बनाना, साफ–सफाई करना तथा हस्तनिर्मित वस्तुएँ बनाना आदि कार्य शामिल थे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कार्य जो समाज की दृष्टि से न तो बहुत अधिक सम्मानित ही थे और न ही घृणित–वे उन जातियों के हिस्से में आए जिनकी सामाजिक स्थिति निम्न जातियों की तुलना में उच्च तथा उच्च जातियों की तुलना में निम्न थी। लोहार, कुम्हार एवं अहीर आदि जातियाँ इसी श्रेणी के अंतर्गत आती हैं जो क्रमशः लोहे के हथियार बनाने मिट्टी के बर्तन बनाने तथा पशुपालन करने का कार्य करती हैं। जाति–व्यवस्था के अंतर्गत कर्म–विभाजन की यही व्यवस्था थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ आज भी ग्रामीण समाज में विद्यमान दिखाई देती हैं।

कर्म–विभाजन के असंगत, अप्राकृतिक व अन्यायपूर्ण विभाजन के अनुक्रम में जाति–व्यवस्था का दूसरा सामाजिक पक्ष यह रहा कि इसने व्यक्ति के वंशानुगत कार्य–परिवर्तन को निषिद्ध कर दिया। जाति–व्यवस्था किसी व्यक्ति को उसके परम्परागत कार्यों को परिवर्तित करने की अनुमति नहीं देती है चाहे वह दूसरे कार्यों में कितनी ही अधिक योग्यता और निपुणता क्यों न धारण करता हो। कर्म–परिवर्तन के निषेध को अधिक प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए लोक विश्वासों और किंवदन्तियों का सहारा लिया गया। इसके अतिरिक्त जाति–व्यवस्था के कर्म–सिद्धांत का कोई उल्लंघन न कर सके–इसके लिए दैवीय प्रकोप के भय, अधर्म तथा सामाजिक बहिष्कार आदि को हथियार बनाया गया जिसके आधार पर ही जाति–व्यवस्था में अंतर्हित परम्परागत कर्म–सिद्धांत को दीर्घकाल तक स्थिर रखने में सहायता मिली। कर्म

परिवर्तन का प्रतिषेध निम्न जातियों पर अधिक कठोरता के साथ लागू किया गया जिसका मुख्य कारण समाज की उच्च जातियों का भय था। इन जातियों को इस बात का डर था कि यदि निम्न श्रेणी की जातियाँ खेती–किसानी, कटाई–बुनाई और मृतक पशुओं को फेंकने का कार्य नहीं करेंगी तो उन्हें ये सारे कार्य स्वयं करने पड़ेंगे, जिससे उनका सामाजिक वर्चस्व समाप्त हो जाएगा। हालाँकि आधुनिकता, भूमण्डलीकरण तथा सूचना एवं सम्पर्क क्रांति के वर्तमान युग में कार्य–विभाजन का यह सिद्धांत शहरी समाज में जाति–व्यवस्था के दायरे तक ही सीमित नहीं रह सका है लेकिन ग्रामीण समाज में कुछ उदारता और लचीलेपन के साथ आज भी कर्म–विभाग की यही व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। गाँवों में आज भी धोबी का कार्य कपड़े धोना, मोची का कार्य जूता–चप्पल बनाना, बढ़ई का कार्य लकड़ी की वस्तुएँ बनाना, कुम्हार का कार्य मिट्टी के बर्तन बनाना तथा लोहार का कार्य हंसिया–दरांती और कुदाल पीटना ही है। व्यवसायीकरण और बाजारवाद के प्रभाव स्वरूप आज भले ही कोई व्यावसायिक कार्य किसी जाति विशेष की वशांनुगत पहचान न रह गया हो लेकिन ग्रामीण जीवन में इन कार्यों पर इन्हीं जातियों का वंशानुगत आधिपत्य देखा जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि कार्य की कठिनता और उसमें लगने वाले अत्यधिक श्रम से बचने के लिए समाज की उच्च जातियों ने वंशानुगत परम्परा और खोखली सामाजिक प्रतिष्ठा को आधार बनाकर व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्धि तथा अपनी आवश्यकताओं और महत्वकांक्षाओं की पूर्ति करते हुए निम्न जातियों के दीर्घकालिक शोषण, दमन और उत्पीड़न हेतु जाति–व्यवस्था मे निहित कर्म–विभाजन सिद्धांत का व्यापक प्रचार किया जिसका प्रभाव समाज के कर्म–विभाग पर आज भी दिखाई देता है।

जाति व्यवस्था का तीसरा सामाजिक पक्ष यह रहा कि कर्म–परिवर्तन का निषेध होने के कारण समाज में निर्धनता, दरिद्रता और भुखमरी की स्थिति लगातार बढ़ती गयी। क्योंकि जाति विशेष के लोग अपना वंशानुगत कार्य छोड़कर कोई अन्य कार्य नहीं कर सकते थे जिसके कारण उनके परिवार में सदस्यों की संख्या तो लगातार बढ़ती रही परंतु उनकी आय के स्रोत में कोई इजाफा नहीं हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति निरंतर दयनीय होती गयी। न तो पंडित जी की पारिवारिक आवश्यकताएँ पूजा–पाठ कराने और दक्षिणा लेने से पूरी हो रही थीं और न ही खेतिहर मजदूरी करने वालों, लोहा पीटने, चाक घुमाने तथा कपड़ा धोने का कार्य करने वाले लोगों के परिवारों का भरण–पोषण उनके परम्परागत कार्यों से संभव रह गया। गरीबी और भुखमरी की स्थिति उच्च तथा निम्न दोनों जातियों में प्रादुर्भूत हुई लेकिन पहले से ही अभावग्रस्तत्ता का जीवन व्यतीत करने एवं कम लाभ वाले कार्यों को वंश परम्परा से करते रहने के कारण निम्न जातियों की आर्थिक स्थिति अधिक ह्रदय विदारक होती गयी और शीघ्र ही उनके कार्य की तरह ही उनकी यह स्थिति भी परम्परागत स्थिति में परिवर्तित हो गयी जिसे बदलने में कई सदियों का समय लगने वाला था।

जाति–व्यवस्था का चौथा एवं सर्वाधिक विद्रूप सामाजिक पक्ष अस्पृश्यता की भावना का विकास था। जिस प्रकार से समाज के लिए जाति–प्रथा एक अभिशाप के समान है उसी प्रकर से अस्पृश्यता या छुआछूत की भावना जाति व्यवस्था के लिए एक कोढ़ से अधिक कुछ भी नहीं है। प्रत्येक जातियाँ सदैव से ही अपने से निम्न जातियों को घृणा की दृष्टि से देखती रही हैं तथा इनमें वैवाहिक संबंध की बात तो दूर एक–दूसरे के रहन–सहन, खान–पान आदि में भी अस्पृश्यता की भावना पाई जाती है। क्योंकि पासी, धोबी व कोली आदि जातियों को सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक निम्न कोटि का माना जाता रहा है इसलिए इनसे ऊपर की जातियों ने इनके साथ सर्वाधिक वीभत्स एवं अमानवीय व्यवहार किया है। अत्यधिक श्रमसाध्य कार्य करने के बाद भी जातीय पायदान पर इन जातियों से ऊपर स्थित चारों वर्णों से संबंधित जातियों ने इनके स्पर्श मात्र से जल जैसे पवित्र एवं प्राकृतिक उपहार को भी अपवित्र मान लिया। अस्पृश्यता की इस भावना ने समाज के चतुर्मुखी विकास को अवरूद्ध करके उसके साथ सबसे बड़ा अहित किया है।

छुआछूत की इस व्यवस्था में निम्न जाति के लोगों का अपने से उच्च जाति के लोगों के साथ उठन–बैठना, खेलना, रहना–खाना, मंदिर में प्रवेश, धार्मिक पुस्तकों को छूना, सार्वजनिक जगहों पर जाना तथा कुएँ व जलाशय से पानी भरना आदि प्रतिबंधित था। यदि कभी भूलवश उनसे ऐसी गलतियाँ हो जाया करती थी तो उच्च जाति के लोग या तो उनके लिए दण्ड का विधान करते थे या फिर कर्मकांड आदि के

द्वारा शुद्धीकरण करके उन्हें पुनः उपयोग के लायक बनाते हैं। निम्न जाति के लोगों को धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने की मनाही थी, जबकि ऐसी गतिविधियों में प्रयुक्त होने वाली अधिकांश सामग्री के निर्माता इन्हीं जातियों के लोग हुआ करते हैं।

जाति–व्यवस्था का पाँचवा और अंतिम महत्त्वपूर्ण सामाजिक पक्ष यह रहा है कि इसने समाज में अंधविश्वासों और कर्मकांडों आदि को बहुत अधिक बढ़ावा दिया। अलग–अलग जातियों ने कभी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो कभी ईश्वरीय प्रकोप के भय से अपने स्वार्थ एवं सुविधा के दृष्टिगत विभिन्न कर्मकांडों और अंधविश्वासों को अपनाया। क्योंकि जो सर्वाधिक दलित, पीड़ित एवं शोषित होता है उसी का ईश्वर के प्रति सर्वाधिक अनुराग भी होता है इसीलिए ईश्वर के भय और उसकी अनुकम्पा प्राप्ति के उद्देश्य से या यों कहें कि अलौकिक सत्ता को प्रसन्न करने के लिए समाज की निम्न जातियों में अनेक तरह के आडम्बर, कर्मकांड तथा अंधविश्वास आदि अस्तित्व में आए। कभी अपने मालिकों को भगवान समझना तो कभी उनके द्वारा दिए गए जूठन को ही ईश्वरीय प्रसाद मानकर उनकी चरण–धूल में लोट जाने को लालायित होना, आदि– से भी सामाजिक अंधविश्वासों एवं कर्मकांडों में अतीव वृद्धि देखने को मिली।

संदर्भ–सूची–

1. भारत में जाति : उद्भव एवं विकास, डॉ0 सुजाता कुमारी, बिहार ग्रंथ अकादमी पटना, पृ0संख्या–55
2. भारतीय समाज, डॉ0 ए0आर0एन0 श्रीवास्तव, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण–2016
3. सामाजिक परिवर्तन, डॉ0 ए0आर0एन0 श्रीवास्तव, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण–2017
4. समाजशास्त्र (सामाजिक अंतः क्रियाओं का अध्ययन), डॉ0 परिमल बी0कर, न्यू सेंट्रल बुक एजेंसी, कोलकाता, संस्करण–2009
5. धर्म और समाज, डॉ0 राधाकृष्ण, पेंगुइन बुक्स इण्डिया, नई दिल्ली, संस्करण–2019
6. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, डॉ0 जयशंकर मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, संस्करण–2018

हिन्दी कथा साहित्य में मानवाधिकार की संकल्पना (मानव-मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. राहुल*

शोध सार– मानवाधिकार की अवधारणा एक सुसभ्य समाज की अवधारणा है, जिसमें किसी भी व्यक्ति या व्यक्ति के समूह को उत्पीड़न, अत्याचार, यातनाओं और भ्रष्टाचार से मुक्त जीवन–यापन का पूर्णतः अधिकार प्राप्त हो। हिन्दी जगत के कथा–साहित्य में मानवाधिकार की संकल्पना मानव–मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः है। कथा–साहित्य में मानवाधिकार की संकल्पना एक सभ्य समाज के लिए है। कहानी कविता और उपन्यासों में मानवाधिकार की संकल्पना देखने को मिलता है जो आज के परिप्रेक्ष्य में मानव समाज के कर्तव्यमूल्यों एवं मानवाधिकार हर कर्तव्यों का याद दिलाता है। कथा सम्राट प्रेमचंद मानवाधिकार को केन्द्र बिन्दु में रखकर कथा का सृजन किया है, चाहे वह गजदूर वर्ग हो, स्त्री के अधिकार हो या किसान वर्ग के अधिकार हो। हिन्दी कथा–साहित्य में मानवाधिकार की संकल्पना स्त्री संघर्ष, किसान–मजदूर वर्ग एवं दलित–जाति वर्ग चेतना की आवाज बनकर दिखता है। मानवाधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थियाँ है जिसके अभाव में मानव अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता है।

वर्तमान समय में मानवाधिकार साहित्य चिन्तन का प्रमुख विषय है। हिन्दी कथा–साहित्य मानव मूल्यों के संरक्षण के माध्यम से मानवाधिकारों की सुरक्षा व संरक्षण के दायित्व का संपूर्ण निर्वाह करता है। कथा–साहित्य का धरातल मानव है। कथा–साहित्य का धूरी ही मानव और उनके अधिकार हैं। कथा–साहित्य का उद्देश्य सत्य, अहिंसा, करुणा, मैत्री, समानता, एकरूपता और वसुधैव कुटुम्बकम् का आह्वान कर समाज में समता और न्याय स्थापित करना है।

21वीं सदी में मानवाधिकार साहित्य चिन्तन का धूरी है। यह चिंतन साहित्य के विभिन्न विधाओं में स्पष्टतः देखा जा सकता है चाहे वह कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण या फिर आत्मकथा ही क्यों न हो। मानवाधिकार से स्पष्ट है कि मौलिक अधिकार और आजादी, जिसके हकदार सम्पूर्ण मानव है। मानवधिकार का इतिहास सृष्टि के साथ–साथ चली आ रही है जो बहुत प्राचीन है जो मानव और उनके कर्त्तव्यों को सुरक्षा मुहैया करती है। मानव समाज से ही सृष्टि सुचारू रूप से चलती है जिसका प्रमुख कारण है अधिकार, स्वतंत्रता के साथ जीवन निर्वाह करना।

वर्तमान युग में 10 दिसबर को सम्पूर्ण विश्व में मानवाधिकार दिवस (International Human Rights Day) मानाया जाता है। 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) ने मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र स्वीकार किया जिसमें जात–पॉत, लिंग–भेद, धर्म, कुल, कर्म, पेशा, वर्ग, समुदाय, आदि के आधार पर समाप्त करके सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रदान किये गये। 15 अगस्त सन् 1947 को भारत देश अजाद हुआ। आजादी के दो साल बाद 26 जनवरी 1950 को अपने संविधान में मौलिक अधिकार के रुप में मानवाधिकारों को शामिल किया। बहुसंख्यक देशों में ही मानवाधिकार आयोग बने हैं और बहुसंख्यक देशों में ही सबसे अधिक मानवाधिकार का हनन भी होता है। क्या इसकी वजह मानव स्वयं है या फिर वहाँ की सरकार खुद उत्पीड़न है अर्थात् मनुष्य के मनुष्य होने के नाते मानव का क्या अधिकार है और उन अधिकारों की रक्षा कैसे की जाए, यह सवाल जितना बड़ा है उतना ही पेचीदा भी है। क्या समाज आज जितना अधिक अशिक्षित से शिक्षित हो रहा है उतना ही मानवाधिकार वह भूलता जा रहा है? मानवाधिकार देश के संविधान द्वारा दी जाती है और मानव होने के नाते उनका संरक्षण करना कर्तव्य है। मानव मूल्य की संरक्षण मानव द्वारा स्वयं ही हो सकता है। जिससे मानव अधिकार की सुरक्षा होगी।

*** हिन्दी प्रवक्ता, बाँका, बिहार।**

मानवाधिकार से ही आपसी सम्बन्ध, एक–दूसरे के प्रति प्रेम विश्व में कायम रहता है। हम मानव को अपने मूल्य कर्त्तव्यों को न भूलकर बल्कि उसे और अधिक बढ़ावा देनी चाहिए। कथा–सम्राट प्रेमचंद कहते हैं, ''जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य–प्रेम न जागृत हो–जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करें, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकार नहीं।[1] कथा–सम्राट प्रेमचंद जी ने मानावधिकार की जो संकल्पना और अधिकार बताया है वह हम मानव को वर्तमान परिदृश्य में अमल करना चाहिए। साहित्य समाज का और युगीन परिस्थितियों साफ–सुथरा दर्पण होता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' को 'स्वर्ण युग काल' कहा जाता है इसको कहे जाने का प्रमुख कारण है हिन्दू और मुस्लिम मानव में समन्वय की भावना स्थापित करना। भक्तिकाल के कबीर, रैदास, दादू दयाल, तुलसीदास, सूरदास जैसे कवियों ने अपने लेखनी और वाणी से जनता को एकता स्थापित करने में पूर्णतः सफल हुए। भक्तिकाल में मानवाधिकार सबसे सर्वोपरि रहा जिस कारण हिन्दी साहित्य के इतिहास के चार काल खण्डों में से 'भक्तिकाल' को 'स्वर्ण युग काल' भी कहा जाता है। हिन्दी साहित्य में मानवाधिकार की संकल्पना आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक देखा जा सकता है। कबीर से लेकर नागार्जुन तक, मीराबाई से लेकर महादेवी वर्मा तक। कबीर मानवाधिकार को लेकर बहुत ही सक्रिय समाज सुधारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। कबीर के हर एक दोहे व पद में मानवाधिकार की बात है।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लिजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान ।।[2]

जात–पाँत के प्रबल विरोधी और मानव मात्र को समान ज्ञान को ही सर्वाधिक महत्व देने वाले क्रान्तिकारी संत कबीर दास की साखियाँ हैं....... जो समाज में समन्वय की भावना का प्रसार करते हैं। हिन्दी कथा–साहित्य में मानवाधिकार की संकल्पना मानव मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक होता आ रहा है। फणीश्वर नाथ रेणु की आंचलिक उपन्यास 'मैला आँचल', प्रेमचंद की 'कर्मभूमि', रंगभूमि 'बूढ़ी काकी', 'मंगलसूत्र', 'कफन', 'पंचपरमेश्वर' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'भारतवर्ष उन्नति', कथा–शिल्पी राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', तुलसीराम की 'मुर्दहीया', शरण कुमार लिम्बाले की 'अक्करमासी' सुदामा पाण्डेय की 'संसद से सड़क तक' आचार्य रामचन्द्र शुल्क की 'चिन्तामणी' नागार्जुन की 'हरिजन गाथा', 'अकाल और उसके बाद', काशीनाथ सिंह की 'काशी का अस्सी', अब्दुल विस्मल्लाह की 'झीनी–झीन बीनी चदरिया' राष्ट्रीय कवि रामधारी सिंह दिनकर की 'समर शेष है' दुष्यन्त कुमार के 'साये में धूप', मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' ऊषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' मन्नू भण्डारी की उपन्यास 'आपका बंटी' मैत्रयी पुष्पा की 'गुडिया भीतर गुडिया' महाप्राण कवि निराला की 'वह तोड़ती पत्थर','चतुरी चमार' महेन्द्र भीष्म की 'मै पायल' की रचनाएँ जन–जीवन की पीड़ा को मुख्य स्तर देती है, अन्याय का विरोध कर, न्याय का पक्ष लेती है और शोषित–पीड़ित मानव को न्याय दिलाने के लिए रचनाएँ प्रतिबद्ध है। धूमिल अपने कविता के लक्ष्य को बताते हुए कहते हैं कि मैं अपनी कविता के माध्यम से संघर्षशील जन के चरित्र को भ्रष्ट होने से बचाने का प्रयत्न करूँगा–

''लोकतंत्र के /इस अमानवीय संकट के समय/कविताओं के जरिए। मैं भारतीय/वामपंथ के चरित्र का/भ्रष्ट होने से बचा सकूँगा।''[3]

आप पता लगाए कि ये संस्थाओं में बैठे सत्ता विमर्श करने वाले तथाकथित विमर्शकार अपनी सेलरी का कितना प्रतिशत वंचित (स्त्री, दलित, किन्नर, गरीब बच्चों, विकलांग, वृद्ध और भी) वर्गों पर करते हैं और वंचितों के प्रति इनकी वास्तविक दृष्टि क्या है तो जानकर आप चौकेगें कि ये बस भुना रहे हैं।

जो माता–पिता अपने शिक्षित युवा को राजनीति की पचड़े में नहीं पड़ने देते हैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि एक पढ़ा–लिखा युवा राजनीति में हिस्सा या जिम्मेदारी नहीं लेता है तो एक अनपढ़ नेता इन्हीं पढ़े–लिखे लोगों पर राज करेगा।

धूमिल की रचनाओं में लोक में घटित यथार्थ का आवरणरहित चित्र प्रदर्शित हुआ है। कथा सम्राट प्रेमचंद के विषय में लोक प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा कहते हैं, ''ऊँच–नीच के भेदभाव के प्रति प्रेमचंद से अधिक सचेत और कोई हिन्दी लेखक नहीं था। पर उनके कथा–साहित्य में वर्ग–संघर्ष है, जमींदारों, महाजनों अंग्रेजी राज के हाकिमों के विरुद्ध संघर्ष है, अगड़ी–पिछड़ी जातियों के बीच संघर्ष नहीं है। कहीं भी यह संकेत नहीं है कि बिरादरी के आधार पर सब लोग एक हो जाएँ तो उनका उद्धार हो जाएगा। ऊँच–नीच का भेदभाव डूबता हुआ ययार्थ है, वर्गों का निर्माण, जमींदारों–महाजनों के खिलाफ गरीब किसानों का संघर्ष उगता हुआ यथार्थ है।''[4] मानवाधिकार के लिए हिन्दी साहित्य के प्रेमचंद, भारतेन्दु, फणीश्वर नाथ रेणु, विवेकी राय, राजेन्द्र यादव, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', कमलेश्वर, मोहन राकेश, नसिरा शर्मा, ऊषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में लेखक के रूप में व्यक्तित्व सबसे अधिक क्रान्तिकारी था। हिन्दी कथा–साहित्य मानव–मूल्यों के संरक्षण के माध्यम से मानवाधिकार की सुरक्षा व संरक्षण के दायित्व का निर्वाह करती है।

कथा का धरातल मानवीय है, जिसका उद्देश्य सत्य, अहिंसा, करुणा, एकता, मैत्री, शान्ति, अमन–चयन और विश्व–बन्धुत्व के साथ ही मानवाधिकार के महामंत्र–स्वतंत्रता, समता और न्याय का आह्वान है। भारतीय जीवन मूल्यों से ओत–प्रोत हिन्दी कथा–साहित्य मानव एकता, समरसता और समानता के मार्ग पर प्रशस्त करती है।

निष्कर्ष– वस्तुतः हिन्दी कथा–साहित्य समकालीन समाज का जीवंत दस्तावेज है। हिन्दी कथा–साहित्य में समाज अपनी समूची विशेषताओं, विद्रुपताओं, संवेदनाओं के साथ उजागर होता है। मानवाधिकारों के संरक्षण एवं उन्नयन की दिशा में कथा–साहित्य प्रतिबद्ध है परिणागतः कथा–साहित्य के केन्द्र में स्त्री, दलित, जाति–धर्म के साथ ही किसान वर्ग, किन्नर समुदाय, आदिवासी समाज भी विद्यमान है जो मानव मूल्यों के संरक्षण के माध्यम से मानवधिकार की सुरक्षा व संरक्षण के दायित्व का निर्वाहन करती है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. 'साहित्य का उद्देश्य'– प्रेमचंद, नवीन संस्करण–2015, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–13।
2. 'कबीर'– सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–179।
3. 'संसद से सड़क तक' – सुदामा पाण्डेय, अशोक प्रकाशन, 2012, नई दिल्ली, पृष्ठ–7।
4. 'प्रेमचंद'– रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण 1941, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–29।

✯

अज्ञेय के यात्रा वृत्तों में नगरीय जीवन

प्रभात मिश्र*

यायावर अज्ञेय ने अपने जीवनकाल में दो यात्रावृत्त लिखे जो 'अरे यायावर रहेगा याद' एवं 'एक बूंद सहसा उछली' है। प्रथम में भारतीय परिक्षेत्र में की जाने वाली यात्राओं का वर्णन मिलता है और द्वितीय में वैश्विक यात्राओं का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त तीसरा यात्रावृत्त भी– 'जन जनक जानकी' (1984) शीर्षक पुस्तक है जिस का संपादन अज्ञेय ने किया। यायावरी जीवन व्यतीत करने में सबसे सर्वोत्तम नाम राहुल सांकृत्यायन का आता है और उसी परम्परा के दूसरे घुमक्कड़ के रूप में अज्ञेय अपना नाम सुनिश्चित करते हैं। यात्रा की संख्या उनके मन की गति से मापी जाय तो शायद अज्ञेय की घुमक्कड़ प्रवृत्ति का ठीक–ठीक पता चलेगा। भारत के विभिन्न सुगम–दुर्गम शहरों, पहाड़ों और बड़े यत्न से पहुँचने वाले स्थलों की यात्रा अज्ञेय ने संघर्षो के साथ और भारतीय संस्कृति की आत्मा का आचमन किया। कश्मीर से कन्याकुमारी, उत्तरी–पूर्वी सात राज्यों जहां मानव घनत्व कम है, यातायात के संसाधन नगण्य हैं, अज्ञेय से नहीं छूटे। इसके अतिरिक्त वैश्विक यात्राओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें अमेरिका व जापान के बाद अन्य महत्वपूर्ण देशों का सर्वोपरि है। भारत के अनेकानेक नगरों की चर्चा उन्होंने अपने यात्रावृत्त में की है, जिसमें संस्कृति, सभ्यता, सौन्दर्य, जीवन, शैली आदि के प्रति अपना पारदर्शी दृष्टिकोण प्रकट किया। वैश्विक यात्राओं में उनका वैशिष्ट्य इसलिए भी है कि विश्व के देशों की चर्चा करते समय वहां के एवं भारत के नगरों का तुलनार्थक वर्णन किया गया है, यानी विश्व पटल पर भी वे भारत को उच्चासीन रखते रहे। यात्राओं के प्रति संघर्ष, रूचि, अध्येतारूपी दृष्टिकोण एवं विराट यात्राओं के प्रति स्वयं लिखते है– ''मैंने देश की भिन्न–भिन्न संकरी चौड़ी, कच्ची–पक्की, उबड़–खाबड़ सड़कों पर लुढ़कते–ढुलकते अनेकों बार सोंचा है कि चक्राकृति में सौन्दर्य के लिए बहुत अधिक नम्बर चाहे न भी पाऊँ, अपनी आदि अन्तहीन गति–क्षमता का दावा तो कर ही सकता हूं– और यह भी कह सकता हूं कि स्वयं सुन्दर न होकर भी मैं संसार के अखिल सौन्दर्य की नींव हूं क्योंकि मैं संस्कृति की नींव हूं।''[1]

अज्ञेय के यात्रावृत्तों की आधारशिला संस्कृति की नींव पर ही आधृत है। उन्होंने भारतीयता की विपुलता का विश्व में डंका बजाया। अज्ञेय स्वयं को 'अकिंचन यायावर' के रूप में सिद्ध करते हैं, उनके दोनों यात्रावृत्त उनकी इस संज्ञा को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित करते हैं।

अज्ञेय के यात्रावृत्त में नगरीय जीवन का वर्णन एवं नगरों का सौन्दर्य दो स्वरूपों में किया गया है जिसमें एक भारतीय शैली में एवं दूसरा वैश्विक आधार पर किया गया है। भारतीयता से परिपूर्ण यात्रावृत्त में हम भारतीय नगर सौन्दर्य का एवं विश्व के नगरों के सौन्दर्य का अध्ययन करेंगे।

क– अज्ञेय के यात्रावृत्त में भारतीय नागर सौन्दर्य

अज्ञेय ने अपने यात्रावृत्तों में भारत के विशिष्ट नगरों की यात्रा की और वहां के सौन्दर्य की चर्चा की। यात्रा में पहाड़ों, कन्दराओं तक जाने में पथ में पड़ने वाले शहरों में होटल, यातायात के साधन एवं खानपान का वर्णन भी किया। नगरों में कामरूप, तिनसुकिया, कूचबिहार, सिलीगुड़ी, दार्जलिंग, पूर्णिया, कटिहार, कलकत्ता, बैरकपुर, हुगली, आसनसोल, इलाहाबाद, बनारस, आगरा, मथुरा, नई दिल्ली, एबटाबाद, मुजफ्फरपुर, पेशावर आदि के नाम उनके 'अरे यायावर रहेगा याद' पुस्तक में वर्णित हैं। भारत के नगरों के प्रति लेखक की अलग ही प्रीति है। लेखक ने नगरों के सौन्दर्य की प्रशंसा के साथ–साथ नगरों में व्याप्त समस्याओं जैसे– गन्दगी, भीड़–भाड़ अपराध स्वार्थपरकता का भी वर्णन यथास्थान करने में कोई झिझक महसूस नहीं की है। नगर वैविध्यता के प्रतीक है उनमें सबका अपना स्थान है अज्ञेय का पारखी व्यक्तित्व

***शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।**

नगरों की शोभा का अच्छा जानकार है। अज्ञेय ने यात्रायें अपनी रूचि एवं जिज्ञासू प्रवृत्ति से की है। इसलिए उन यात्राओं में सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। यात्रायें पाठक को जीवटता प्रदान करता है और पाठकों को डुबा लेती हैं। ''भारत के नगरों की अपनी–अपनी विशेषताएं हैं। यों तो किसी भी शहर को एक विशेषण से नहीं लाँघ लिया जा सकता क्योंकि प्रत्येक में विविधता हैं, किन्तु उस विविधता की भी अलग लीकें हैं। यथा जोधपुर में रंगों की विविधता उसे स्पष्ट करती है, श्री नगर में गन्धों की विविधता ('सहस्त्रगन्धा नगरी') लाहौर में गन्दगी की अथवा (इस विषय में कलकत्ते को प्रतियोगी मान ले तो), फैशन की इत्यादि। इसी प्रकार पेशावर की विशेषता उसके बाजारों की सजीवता में थी–यद्यपि उनमें रंगीनी, गंध, गंदगी या फैशन की भी कुछ कमी न थी।''[2]

फैशन, रंग, स्टाइल, होटल, रेस्टोरेंट, पार्टी, पब, खान–पान, गाड़ियां आदि नगरों में सर्वत्र विद्यमान है। असम, मणिपुर, सिक्किम के शहरों की चर्चा विशेषकर लेखक ने की शिलांग की नगर पालिका का भी वर्णन एक स्थान पर किया गया है। नगर की पक्की सड़कें, मोटर गाड़ियां, आवास की सुविधा किसी भी यात्रा के लिए सबसे प्रारम्भिक आवश्कयता है जो उनके यात्रावृत्तों में सुलभता से मिल जाता है। अज्ञेय ने अपने यात्रावृत्त में पथ की सुन्दरता और संघर्ष का द्वन्द्वात्मक विवरण दिया है इसमें लोगों से मेल–जोल की उपलब्धता नहीं है जो इसे केवल यात्रावृत्त बनाता है जिसमें संरमरणात्मकता का लेशमात्र नहीं है। कामरूप की प्राचीनता के विषय में वर्णन है, नगर रत्नपुर की चर्चा है, तिनसुकिया की संघर्ष यात्रा का भी वर्णन यात्रावृत्त में किया गया है। बर्मा–चीन के बार्डर वाली सड़क भी इसमें निहित है। बाजार–हाट, मन्दिर, दर्शनीय स्थलों, व्यापारिक केन्द्र जो नगर की विशिष्टता बताते हैं का वर्णन अज्ञेय ने मनोयोग से किया है। गोवाहाटी के विषय में –

(1) ''जोरहाट–नवगांव–गौहाटी। गौहाटी वास्तव में 'गुवाहाटी' है– असनीया सुपारी (गुवाफल) का प्रसिद्ध प्राचीन हाट। यह असमीया कामरूप राज्य की राजधानी और प्रमुख व्यापार केन्द्र तो रही ही इस के अतिरिक्त नीलांचल पर स्थित कामाख्या देवी के मन्दिर के कारण इसकी कीर्ति और भी फैली।''[3]

(2) ''जोगीगुफा से नद पार करके एक रास्ता धुबड़ी होकर कलकत्ते का है; किन्तु यह अच्छा नहीं है, और 'कानवाई' अच्छी सड़कों पर ही चलते हैं जहां तक कि लाचारी न हो; इसलिए कूचबिहार की सड़क पकड़ी गई। तीसरे पहर तक 'कानवाई' कूचबिहार की सीमा में प्रविष्ट हो गया था, कूचबिहार पहुंचा जा सकता था, किन्तु रात में बड़े शहर में ठहरने की जगह का कष्ट हो सकता है, यह सब यायावर जानते हैं।''[4]

(3) ''सिलिगुड़ी से ट्रेन में लद कर कलकत्ता जाया जाय, और वहां से फिर सड़क पकड़ी जाए। अतः डेढ़ दिन की दौड़–धूप के बाद वैसी ही व्यवस्था कर ली गई। फौजी मालगाड़ी तीसरी रात को छूटने वाली थी; सबेरे की 'कानवाई' की मोटरों को रेल–ठेलों पर लाद दिया गया। पूरी मालगाड़ी केवल मोटर ले जाने वाले ठेलों की थी– आगे आठ–दस गाड़ियाँ एम्बुलेंस की थीं।''[5]

उक्त सभी सन्दर्भों में नगरों का वैशिष्टय निहित है जिसमें नगरों में होने वाली समस्याओं और संघर्षो को भी रखा गया है। यात्रा के मध्य में पड़ने वाले, नगरों में बनारस, इलाहाबाद, मथुरा, कानपुर, आगरा, नई दिल्ली में ठहरने के बंगलों का चुनाव किया गया, जिसका वर्णन लेखक ने किया है और स्टेशन से वहां तक पहुँचने की सभी युक्तियों पर विचार किए गए हैं। शहरों में यात्रा के समय रात में होने वाले आतंक से भी आगाह किया है लेखक ने जो नगरों की प्रायः भयावहता ही है। मन्दिर किले देखने के लिए जो टिकट की व्यवस्था का वर्णन पुस्तक में है वह शहरों की आर्थिक व्यवस्था को बतलाता है। अज्ञेय का विचार है कि शहर गरीबों के ठाठ के लिए नहीं है वहां गरीबों का शोषण होता है, जिसे गरीब अपनी जीविका मानता है और अमीर अपनी शान को बढ़ाने में लगा रहता है। लेखक के यथार्थ अभिव्यक्ति का उदाहरण यही है कि वह शहर को ठीक उसी तरह प्रस्तुत करता है जैसे कि वे हैं; यानी जहां उसे व्यंग्य करने की आवश्यकता लगती हैं वहाँ व्यंग्य और जहां सपाटबयानी कहना सहज लगता वहां उसी तरह से यथास्थिति को उजागर करता है। नई दिल्ली को लेकर अज्ञेय ने व्यंग्य का सहारा लिया है– ''नई दिल्ली....

सब की वह भाभी, जो कि गरीब की जोरू नहीं है! जिसकी मुस्कान की अपेक्षा सबको है, लेकिन जिससे ठठोली करने की हिम्मत किसी को नहीं होगी!''[6]

दिल्ली के बाद पंजाब के शहर पानीपत, कुरूक्षेत्र, अम्बाला, जालन्धर, अमृतसर का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया जहां व्यापार, सन्नाटा, सौन्दर्य आदि बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है। अमृतसर को उत्तर भारत की सबसे बड़ी व्यापारिक नगरी के रूप में लेखक ने बताया है और पंजाब के विशिष्ट शहर के रूप में भी ध्यान खींचा है।

नगरीकरण, परिवर्तन के द्वारा ही सम्भव हो पाया है, जो कि किसी एक क्षेत्र मे ंनहीं हुआ बल्कि जिसकी हुंकार चहुँओर हुई है अर्थात् नगरों का निर्माण वैश्विक परिवर्तन को सूचित करता है। परिवर्तन को लेकर अज्ञेय का कवि मन जाग उठता है–

''विश्वमय हे परिवर्तन!
तुम्हारी ही विधि पर विश्वास
हमारा चिर–आश्वास!
हे अनन्त हत्कम्प!
तुम्हारा अविरल स्पन्दन
सृष्टि–शिराओं में संचारित करता जीवन;''[7]

गुजरात फिर तक्षशिला, नालंदा, एबटाबाद, पेशावर, हरिपुरा, मुजफ्फराबाद का विवरण वहां की शालीनता को अभिव्यक्त करता है। हरिपुर में ग्रांड सड़क की चर्चा नोशेरा में रूसी, रश्यिन लोगों का प्रसंग, रविवार की छुट्टी के दिन भ्रमण आदि नगरीय जीवन का रेखांकित करते हैं। प्राचीन नगरी 'पुष्कलावती' जो सिकन्दरकालीन थी उसको भी दर्शाया गया है। पेशावर नगर की विशेष चर्चा की गई है और वहां के शहर की बस्तियों के भिन्न स्वरूपों का भी उल्लेख किया गया है। शहरों में शिक्षा के केन्द्र, विश्वविद्यालय वैज्ञानिकी अनुसंधान केन्द्र आदि का भी रेखांकन यात्रावृत्त में निहित है। 'किरणों की खोज' अध्याय में कुछ अनुसंधानिक कार्यों को रखा गया है, शोध कार्य भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित है। श्रीनगर में गुलमर्ग के सौन्दर्य होटल, गोल्फ, टेनिस, नृत्य जैसे आधुनिक विषयों को समाहित किया गया है जो नगर से संबद्ध हैं। किरणों का संबंध तकनीक और विज्ञान युग से है जिसने विश्व में होने वाले परिवर्तनों की गति को हजार गुना बढ़ दिया वह भी अज्ञेय के यात्रावृत्त का एक विषय है। रेडियो धर्मिता, अल्फा, बीटा, गामा, कृत्रिम मेघमंडल जैसे तथ्यों की चर्चा करते हुए, आधुनिकीकरण का गहन विश्लेषण किया गया है।

पालमपुर, कांगड़ा, बैजनाथ, कुल्लू जैसे पर्यटक स्थलों की नगरीयता को चित्रित करते हुए, उसका सौन्दर्य और यात्रा के अनुभव बताए गए हैं। हिमालयन अनुसंधान केन्द्र भी चर्चा का विषय है। व्यास नदी के आस–पास की सुन्दरता, इमारतें आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और नगर के परिवेश के विषय में बताते हैं। ''कंट्राई से दो मील चढ़ाई चढ़कर नगर जा सकते हैं। नगर में कुल्लू राज्य की पुरानी राजधानी है। पुराने राजाओं के महल इत्यादि अनेक दर्शनीय इमारतें कुछ प्राचीन मंदिर भी हैं।''[8]

पहाड़ों के नगरों के सौन्दर्य, इमारतें, होटल, महत्वूपर्ण स्थल, खान–पान, प्राचीन परिवेश, शिक्षा केन्द्र, वैज्ञानिक परीक्षण आदि की चर्चा करने के साथ–साथ अज्ञेय ने समतल भूमि से पहाड़ों का भ्रमण करने जाने वाले सभ्य लोगों पर तंज भी कसा है कि वे पहाड़ों का सौन्दर्य देखने के साथ वहां गन्दगी भी कर रहे हैं। अज्ञेय ने अपने यात्रावृत्त में प्राकृतिक सम्पदा की और अपनी चिन्ता प्रकट की है। जो 70 वर्ष पहले के संकेत उनके यात्रावृत्त में मिलते हैं उनका बहुत भयावह रूप हमें आजकल के पर्यावरण पर होने वाले दुष्प्रभाव के रूप में दिख रहा है।

सुमित्रानन्दन पंत के बाद अज्ञेय प्रकृति के चितेरे कवि के रूप में जाने जाते हैं। स्वाभाविक सी बात है कि पहाड़ों पर प्रकृति के यौवन रूप के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ उनके गले नहीं उतरेगी। इस विषय में वे तोलस्तोय की कहानी का भी वर्णन करते हैं– ''एक साधु जब किसी शहर से लौट कर वहां होने

वाले पतन का रोमांचकारी चित्र खींचकर अपने साथियों को साधना का महत्व बताने लगा तब सारी साधु–मंडली अपना–अपना डोरिया–डंडा संभाल कर शहर की ओर ही दौड़ पड़ी।''[9]

इसी कहानी के बाद वे सभ्य लोगों की असभ्यता को दर्शाते हुए कहते हैं कि 'पहाड़ों पर हम सभ्य लोगों की कृपा से जो कुछ हो रहा है उसकी मांग है कि हम परिस्थिति की जांच करें–केवल पर्वतीय प्रदेशों की नहीं अपनी परिस्थिति की जांच करें। सैर के लिए पर्वतों में गया हुआ सभ्य सामाजिक मानव अपना अधःपतन और गन्दगी वहां भी बिखेर आया है।''[10]

उक्त सभी सन्दर्भों से अज्ञेय ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि शहरों में लोगों की जो क्लिष्ट मानसिकता, स्वार्थपूर्ण आचार और प्रकृति के प्रति अनास्था है उसे वे पहाड़ी लोगों पर थोपने का प्रयास करते हैं। अज्ञेय के यात्रावृत्त से हमने भारतीय नगरों के जीवन व परिवेश का अध्ययन जो कि पूर्ण रूप से 'अरे यायावर रहेगा याद' में समाहित है। अब यूरोपीय नगरों की शैली व परिवेश का अध्ययन करेंगे।

ख– अज्ञेय के यात्रावृत्त में वैश्विक नागर सौन्दर्य

अज्ञेय ने जितनी भारत के स्थलों की यात्रायें की हैं उसके समकक्ष या अधिक विश्व के नगरों की यात्रायें की हैं। अज्ञेय का बहुआयामी दृष्टिकोंण उनके जीवन को विराटत्व प्रदान करता है। जापान उनके भ्रमण में सर्वोच्च स्थान पर है उसके बाद अमेरिका चीन, यूरोप आदि देशों की यात्रा का वर्णन ''एक बूंद सहसा उछली'' यात्रावृत्त संकलन में किया गया है। अज्ञेय ने विश्व का आँखों देखा हाल साहित्यिक पुट देकर एक पुस्तक में समाहित कर दिया है जो पाठक के पढ़ने के समय उसे सजीव जान पड़ता है और मनःमस्तिष्क में पाठक स्वयं एक यात्रा में डूब जाता है। यात्रा करना और यात्रा को बिन्दुवत लिखना और तीसरा है उसे साहित्यिक रूप प्रदान करना। यात्रा को बिन्दुवत लिखना, डायरी या रिपोर्ट से अधिक नहीं हो सकता जब तक उसे कथात्मक रूप न प्रदान किया जाय। दुर्लभ क्षेत्र और विदेशों के अनजान शहरों की यात्रा कोई आसान कार्य नहीं है। यात्रायें शारीरिक, मानसिक और आर्थिक तीनों रूपों से प्रभावित करती है, जो किसी भी साधारण व्यक्ति के लिए दुर्लभ है और वह जब अकेले करनी हो तो और भी संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अज्ञेय यात्रा के नियमित और व्यवस्थित तरीके को मजेदार नहीं मानते बल्कि उनका मानना है कि आपने छुट्टी और अन्य व्यवस्थायें जिस स्थान की यात्रा के लिए की है, उसकी बजाय आप ऐन मौके पर दूसरी ओर चल पड़िये इससे एक अलग ही रोमांचक यात्रा का प्रारम्भ होगा जो अव्यवस्थित और संघर्षपूर्ण होगी। यानी यात्रा की अव्यवस्थितता में अज्ञेय को अधिक यकीन था।

''हाँ यहाँ मैं यात्रान्त पर खड़ा होकर निहारता हूं कि यात्रा कहां से आरम्भ होती है और गुरल कांकड़ की तरह पैर साधता हुआ फिर चल पड़ता हूं क्योंकि डगर जहाँ चुकती है, यात्रा वहां आरम्भ होती है:–

''चल चल डगर पर
नन्दा को निहारते''[11]

'एक बूंद सहसा उछली' की भूमिका में पाठकों को संकेत किया कि पाठक जीवन से प्रेम करने वाला और अनुभव के प्रति खुली सोंच रखने वाला होना चाहिए क्योंकि किसी दूसरे के अनुभव को समझने के लिए यह पहली शर्त है। पाठक का किसी भी साहित्यकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करके रसास्वादन होने के लिए उसकी सोंच का स्वच्छन्द और अनुभवों के खट्टे–मीठे आनंद से परिपूर्ण होना चाहिए। इसी से जीवन मूल्यों का आभास भली प्रकार हो पाता है। यात्रा व देशाटन कौन करता है? इस प्रश्न का उत्तर एक है जिसके पास धन, पर्याप्त समय, साधन उपलब्ध हों और दूसरा जिसके पास कुछ न हो इधर से उधर धक्के खाता रहे। यात्री के रूप में पहले वाले को ही कहा जा सकता है दूसरा यात्री की कोटि में खरा नहीं उतरता। स्पष्ट है यात्रा कोई धन–धान्य सम्पन्न व्यक्ति जिसके पास पर्याप्त जानकारी, समझ, शिक्षा आदि है। यही तो यात्रा की मूलभूत आवश्यकताएं हैं।

अज्ञेय ने इस यात्रावृत्त में प्रथम यात्रा में रोम का वर्णन किया है। यात्रा के लिए हवाई अड्डे का प्रयोग, विदेश में बात करने के लिए भाषा का ज्ञान, पर्याप्त धन आदि चीजें उच्च जीवन शैली और नगरीय जीवन को इंगित करती हैं। हवाई अड्डा, अच्छे रेलवे स्टेशन, होटल की सुविधा ये सब जरूरी चीजें नगरों/महानगरों में ही उपलब्ध हैं। जिसका अर्थ है कि यात्रावृत्त नगरीयता को प्रत्यक्ष रूप से वर्णित करते हैं। ''विमान के भीतर, चालक के कैबिन को यात्रियों के कमरे से अलग करने वाले द्वार के ऊपर बत्ती जल उठती है पेटियां लगा लीजिए'– 'सिगरेट बुझा दीजिए'। एक गूंज–सी होती है, फिर स्वर आता है; ''थोड़ी देर में हम लोग रोम के चम्पीनो हवाई अड्डे पर उतरेंगे।''... शहर से हवाई अड्डे तक या अड्डे से शहर तक आते जाते और विमान की प्रतीक्षा में। पर रात के सन्नाटे में हमारी बस बहुत तेजी से सड़क की लम्बाई नापती चलती है और शीघ्र ही रोम शहर में प्रवेश करते हैं।''[12]

रोम की प्रशंसा और वहां की यथास्थिति को बड़े मनोयोग से वर्णित किया गया है। जो बातें रोम के सन्दर्भ में अज्ञेय ने कहीं हैं, वे सभी विशेषताएं ही मिलकर किसी सामान्य क्षेत्र को नगर की श्रेणी में लाती हैं। नगर की मूलभूत विशेषताएं पूर्व में कई बार चिन्हित कर चुके हैं जिसे अज्ञेय अपने शब्दों में इस प्रकार कहते हैं– ''स्वच्छ सुन्दर सड़कें, जहां–तहां प्रतिभा मण्डित फव्वारे– ये फव्वारे न केवल इटली की मूर्तिशिल्प और वास्तु–प्रतिभा के उत्कृष्ट नमूने हैं वरन् पौराणिक आख्यानों से इतने गुंथे हुए हैं कि पूरी क्लासिक परम्परा उनकी फुहार के साथ मानो झरती रहती है।.... यूरोप के पुराने शहरों की ये बलखाती गलियां एक अद्वितीय सौन्दर्य लिए हुए हैं। बड़ी सड़कों को देखकर चले जाना मानो एक लिफाफे को देखकर बिना उसके भीतर के निजी पत्र की बात पढ़े बिना ही चल देना है।''[13]

रोम के मध्य स्थित 'फोन्ताना त्रेवी' की तुलना वे दिल्ली के 'हड़िया पीर' से करते हैं जहां सिक्का डालकर लोग मनोकामना मांगते हैं और प्रेमी युगलों की भीड़ लगी रहती है। नगर अकेलेपन के गढ़ हैं फिर चाहें वे कितने सुन्दर, आकर्षक और भीड़–भाड़ वाले हों। उनके अनुसार शहरों के अन्दर निवास करने वाले एक गति–युत, कर्मरत, परम्परा–सम्पन्न, जीवन–मानव समाज के रूप में होते हैं। नगर जीवन शैली का उत्कर्ष एवं जीवन संवेदना की विडंबना हैं।

> ''भीड़ों में
> जब–जब जिस–जिससे आँखें मिलती हैं
> वह सहसा दिख जाता है
> मानव :
> अंगारे सा, भगवान सा
> अकेला।''[14]

उक्त काव्य पंक्ति नगरों के लोगों अकेलेपन का बोध कराती है और बंगाली, कविता 'एकला चलो रे' का रूपायन कराती है। लेखक के दृष्टिकोंण में रोम यूरोप का सबसे स्वच्छ शहर नहीं है, और तुलना भारत के नगरों से करते हैं नगरों में विज्ञापनों, शादियों में लाउडस्पीकर और व्यर्थ खर्चों, जो सिर्फ दिखावे मात्र के लिए किए जाते हैं फिर वो दिल्ली हो या पेरिस सब एक सा है। ''या कि लन्दन या पेरिस की दुकानों अथवा विज्ञापनों में स्त्रियों के अण्डरवियर का अतिरिक्त प्रदर्शन–अपने यहाँ शादियों में लाउडस्पीकरों से गोलियों की बाढ़ की तरह बरसते वाले घटिया फिल्मी गानों के समान गला फाड़–फाड़कर अपनी ओर ध्यान खींचने वाले भोंडे विज्ञापन–किन्तु भारत लौटकर देखता हूँ कि दिल्ली और कलकत्ता केन्द्रीय बाजारों के गलियारे भी इन्हीं से पट गए हैं– दीवारों पर उभार–उभारकर टांगी हुई चोलियों और जमीन पर बिखरी हुई भद्दी रंग–बिरंगी पत्र–पत्रिकाएं।''[15]

नगरों का बुरा हश्र वहां व्याप्त अश्लीलता, नंगापन और ढकोसले बाजी ने वहां की जीवन शैली को अलग श्रेणी में रख लिया है। शहर लोगों के हृदय की संवेदनाओं से नहीं बल्कि मशीन की बटनों से चलायमान हैं और मशीनें मूल्यों को नहीं बल्कि अवसर को अधिक प्रश्रय प्रदान करती हैं। यंत्र/मशीन युग ने नगरों का कायापलट करके रख दिया है। अश्लील पत्र–पत्रिकाएं, भद्दे, नंगे विज्ञापन जो वर्तमान

परिदृश्य में फैशन बन चुके हैं। इंटरनेट पर फैली वर्तमान अश्लीलता का संकेत नगरों के नैतिक पतन के आधार प्रदान कर रहा है। अज्ञेय का मानना है कि, ''मशीन सब कुछ उघाड़ती चलती है, मशीन के आत्मा नहीं है।''[16]

नगर का मानव जीवन मशीनों पर टिका हुआ है, आजकल तो और भी अधिक, मोबाइल व कम्प्यूटर से तो समस्त जीवन चल रहा है। नगर भी मशीनों के दास हैं नगरों की भी आत्मा उधड़ चुकी है वे मात्र हाड़–मांस के पुतले भर रह गए हैं– संवेदनशून्य। इसी निकृष्टता ने मानव मस्तिष्क को मशीनी और जड़भूत बना दिया है जो हृदय में स्वार्थ एवं अहमन्यता को बड़ी ही तन्मयता के साथ पुष्टित कर रहा है। अस्तित्ववाद की भी विकृत छवि ने नगरीय समाज पर बुरा प्रभाव डाला है। ''दौड़ इसलिए नहीं कि दौड़ना चाहते हैं, इसलिए कि रूक नहीं सकते। अहं की पुष्टि के लिए बनायी गई मशीन ऐसी हावी हो गयी है कि वह व्यक्ति को ही कुचले दे रही है, वह अपने को अधिकाधिक नगण्य पाता हुआ दौड़ रहा है, दौड़ रहा है और दौड़ता हुआ भी क्रमशः और नगण्य होता जा रहा है। अस्तित्ववाद के नाम पर यूरोप में जो कुछ आया सब स्वस्थ नहीं था पर जो स्वस्थ था उसके मूल में इसी अंकिंचनतत्व का साहसपूर्ण साक्षात्कार था।''[17]

नगरों में आत्मसिद्धि के लिए हो रही अंधी दौड़ ने मानव जीवन की अस्मिता को ही खतरे में डाल दिया है। अन्तर्विरोध और अशान्ति के काले मेघों ने भयावह परिस्थितियों को जन्म दिया है।

रोम के अतिरिक्त स्कॉटहोम, कोपेनहेगन, पेरिस, इंग्लैण्ड, लन्दन, फिरेंज, एथेंस, स्विट्जरलैण्ड, जेनेवा, हालैण्ड, बर्मिंघम, आयरलैण्ड जैसे विश्वविख्यात शहरों की यात्रा करके वहां की शैली से पाठकों को साक्षात्कार कराया है। इटली का वर्णन करते समय वे उसकी सांस्कृतिक परम्परा का बखान करने से नहीं चूकते इसके साथ–साथ नगर की वास्तविकता का संकेत वे चौड़ी, बड़ी नई सड़कों में नहीं बल्कि पुरानी एवं सकरी गलियों की ओर करते हैं क्योंकि वहीं परम्परा और कला का संयोग प्राप्त होता है। अज्ञेय स्वीकारते हैं कि नागर सौन्दर्य के पीछे उदासी विद्यमान है जो प्रकाश के पीदे छिपे अन्धकार को अभिव्यक्त करती है। विराट वेदना नगर वासियों की छटपटाहट को व्यापक बनाती है।

''दृश्य के भीतर से
सहसा कुछ उमड़कर बोला;
सुन्दर के सम्मुख यह तुम्हारी जो उदासी है–
वह क्या केवल रूप, रूप, रूप की प्यासी है।
जिसने बस रूप देखा है।''[18]

शहरी सांचे में जीवन की गतिशीलता में अनाहूत विकलता विद्यमान है यही कवि की चिन्ता का विषय बनकर उभर रही है। यूरोप की छत कहा जाने वाला स्विट्जरलैण्ड की सुन्दरता को बताते हुए वहां के टूरिस्टों के लिए व्यंग भी करते हुए 'टूरिस्टों को आधुनिक जीवन का जुकाम' कहते हैं और नगर के पर्यटन क्षेत्र को उद्योग बतलाते हैं जहां घड़ियां, कैमरे, छोटी मशीनें, डिब्बे के दूध, पनीर चाकलेट की भी चर्चा करते हैं, जो आजकल तो एक आम बात है। अज्ञेय ने अस्तित्ववाद के प्रति बड़ी दिलचस्पी दिखायी है और 'ईसाई अस्तित्ववाद' एवं वैज्ञानिक अस्तित्ववाद की चर्चा की है। वे बताते हैं कि तकनीक और विज्ञान अपने अविष्कार समरसता के साथ सन्तुलन के लिए करती है परन्तु उसे प्रयोग करने वाले नगरों के सभ्य लोग उसके दुष्परिणाम दिखाने के लिए जिम्मेदार हैं।

तरंग–चपला सेन नदी के तट पर स्थिति पेरिस नगर को यूरोप का सबसे सुन्दर शहर भी कहते हैं और दूसरी ओर उसे कबाड़ व हृदयहीन कहने में भी ग्लानि नहीं महसूस करते। सुन्दरियों के देश में गाइड के रूप में महिलाएं, चौबीस घण्टे खुले रहने वाले होटल, मुर्गे व मेढक पर नंबर लगाकर उसका भोजन करना ये सब बातें पेरिस नगर की उच्च जीवन शैली और अत्याधुनिक मकानों को स्पष्ट करती हैं। पेरिस ऐसा शहर है जहाँ व्यक्ति भीड़ में रहकर भी अकेला ही है। नगर के किताबी परिचय में और वास्तविक अनुभूति में, जमीन–आसपान का अन्तर भी होता है परन्तु किताबी परिचय यात्रा को पाठकों के लिए छायाचित्र तो उपलब्ध करा ही सकता है। लन्दन वाले यात्रावृत्त वे कहते हैं– ''हर नगर का अपना एक

स्वाद होता है। किसी भी नगर के स्वाद का बखान बहुत किया जा सकता है, लेकिन बखान से किसी दूसरे को चखाया नहीं जा सकता। और ऐसे प्रयत्न से स्वाद को जो आभास होता है वह उससे अधिक सच्चा नहीं होता जितना कि वजीर की शहद में डूबी हुई दाढ़ी चूसकर ईरान के बादशाह को आम के स्वाद का आभास हो सका था।''[19]

अज्ञेय लिखते हैं कि 18वीं शती के नाटककारों ने नागर समाज के कृत्रिम जीवन पर व्यंग्य किए हैं और नगर को सेठों का समाज कहा है। नौकरशाही इस कृत्रिमता को बल प्रदान करती है जिससे वीआईपी कल्चर का जन्म शहरों में होता है– ''कुछ का अवश्य वह लन्दन भी होगा जो वोडहाउस द्वारा वर्णित क्लबों, अभिजात परिवारों की हवेलियों या रियासतों अनब्याहे शहरियों के फ्लैट अथवा कमरों, 'चाची एगाथा' जैसे संबंधियों अथवा जीव्ज जैसे नौकरों के वर्णन के मूर्त होता है।''[20]

अकेलापन, निर्जनता, तेजी, हड़बड़ाहट, शोर, काम की बेचैनी, लन्दन की भी विशेषता है और नगरीय जीवन के सभी मानकों पर ये वैशिष्ट व खरे उतरते हैं। भारत हो या विश्व के और कोई भी शहर नगरीय परिवेश सभी का एक जैसा है, बस कहीं कम तो कहीं अधिक मात्रा में हो सकता है। वैश्विक नागर सौन्दर्य में भी जो विकार समग्र रूप से अभिव्याप्त हैं वे नगरों में मानवीय संवेदनाओं के ह्रास को तो सूचित करते है।

सन्दर्भ सूची–

1. अरे यायावर रहेगा याद, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ पेपर बैक्स, तृतीय संस्करण–2019, पृ०सं०–15
2. वही, पृ०सं०–51
3. वही, पृ०सं०–26
4. वही, पृ०सं०–27
5. वही, पृ०सं०–30
6. वही, पृ०सं०– 35
7. वही, पृ०सं०– 37
8. वही, पृ.०सं०– 112
9. वही, पृ०सं०–123
10. वही
11. वही, पृ०सं०– 180
12. एक बूंद सहसा उछली, अज्ञेय, राजकमल पेपर बैक्स, तृतीय संस्करण–2019, पृ०सं०–19
13. वही, पृ०सं०– 18
14. वही, पृ०सं०–19
15. वही, पृ०सं०–20
16. वही
17. वही, पृ०सं०– 22
18. वही, पृ०सं०– 39
19. वही, पृ०सं०– 90
20. वही, पृ०सं०–91

साक्षात्कार

नवगीत का आगमन गीत रचना की अनिवार्य परिणति है- डॉ. शान्ति सुमन

मोहन कुमार*

*"डॉ. शान्ति सुमन की साहित्यिक यात्रा हिन्दी काव्य जगत में विशिष्ट है। हिन्दी कविता की श्रेष्ठ कवयित्रियों में महादेवी और सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ शान्ति सुमन का नाम आदर के साथ लिया जाता है। उनकी काव्य–यात्रा अंधेरे के खिलाफ रौशनी की जीत का परिचायक है। उनके गीत ज़िन्दगी के संघर्षों से लड़ते–जूझते सामान्य भारतीय जन–मानस के अदम्य साहस और अटूट विश्वास के गीत हैं। उनके गीतों का सौंदर्य–बोध प्रकृति और स्त्री के अपराजेय श्रम–सौंदर्य से जुड़ा है। उनके गीतों की विशेषता गतिशीलता, संघर्षशीलता और हर प्रकार के शोषण और अन्याय के विरुद्ध मानवीय संघर्ष और प्रेम के अपराजेयता का शाश्वत भाव है।" प्रस्तुत है वरिष्ठ हिन्दी नवगीत और जनवादी गीतकर्त्री डॉ. शान्ति सुमन से हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के **शोधार्थी मोहन कुमार** की बातचीत।*

प्रश्न– अपनी गीत–रचना यात्रा के बारे में बताएँ। आपने किन कारणों से अपने सृजन के लिए गीत–विधा का चयन किया?

उत्तर– मैं अपने रास्ते पर चलने वाली कवयित्री हूँ। गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। क्रांति विचार से आती है। गीत जन–भावना को सुरक्षित रखने का सबसे सशक्त माध्यम है। आग उगलती समस्याओं के बीच जिन्दगी की, संवेदनाओं की, जन–भावनाओं की तथा मनुष्यता के हरेपन की लय को बनाये रखने की कोशिश मैंने गीतों के माध्यम से की है। गांव,परिवार तथा मानवीय रिश्ते मेरे गीतों को उर्जा प्रदान करते हैं। अपने जीवन के संघर्षों ने मुझे सदैव काव्य–सृजन के लिए प्रेरित किया। जब मेरा मन संघर्षों से जूझता रहा है और आस–पास की परिस्थितियाँ भी मुझको कसने का ही काम करती रही हैं तब अनायास गीतों ने ही मेरे द्वन्द्वों और तनावों से मुझको मुक्त किया है। गीत मेरे लिए मनोरंजन का माध्यम नहीं बल्कि संघर्षरत श्रमजीवी जनता की तरह वह मेरे जीवन–संघर्ष में भी औजार की तरह रहा है। गीत मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता बनी रहेगी। वर्तमान परिस्थितियों में गीत हमारी आत्मिक आवश्यकता है । गीत में हमारी मनुष्यता और जनवादिता सुरक्षित रहती है। गीतों के अवयवों में विन्यस्त माधुर्य, संवेदनशीलता तथा गंभीरता और आत्मीय संस्पर्श आदि विशेषताओं के कारण मैंने गीत को अपने लेखन का मूल माध्यम बनाया।

गीत और कविता को पढ़ाते हुए प्रारंभ में ही यह महसूस हो गया कि गीत–रचना कविता लेखन की तरह आसान नहीं है। मेरी कविता यात्रा विशेषकर गीत–यात्रा की शुरुआत बचपन में ही हो गई। माध्यमिक शिक्षा के समय मैंने गीत लिखना शुरू किया था। 1960 के बाद उसको स्तरीय और स्थायी संयोग मिला। मैंने कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक, असम से लेकर उत्तर प्रदेश, उड़ीसा तक देशभर में अनेक जगहों पर कवि–सम्मेलनों में काव्य–पाठ किया। लगातार यात्रा करते रहने के कारण मुझे आर्थिक नुकसान भी हुआ लेकिन कविता के सामने मैंने कभी पैसे को महत्व नहीं दिया, क्योंकि कविता ही हमको बड़ा मनुष्य बनाती है और बड़ा मनुष्य ही बड़ा कवि या रचनाकार होता है। मेरे गीतों ने ही मुझे बनाया और अपार प्रतिष्ठा दिलायी। लोगों ने मुझे बहुत स्नेह और सम्मान दिया।

*** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

प्रश्न– आपने अभी कहा कि आप अपने रास्ते पर चलने वाली कवयित्री हैं। तो यह बताइए की बचपन में आपको किस कवि को पढ़ना ज्यादा अच्छा लगता था अर्थात् किस कवि को पढ़–सुनकर आपको कविता लिखने का मन हुआ?

उत्तर– मैं गांव में पैदा हुई। मेरे गांव के बगल में एक गांव था बाराही। मेरे चाचा जी वहां बाराही के पुस्तकालय से किताबें पढ़ने के लिए घर लाते थे और मैं उन सभी किताबों को पढ़ाती थी। इस तरह जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविताएं और गीत पढ़ती थी। उस समय मैं पांचवी कक्षा में पढ़ती थी। कुछ ज्यादा तो समझ नहीं पाती थी परंतु पढ़ती खूब थी। इस समय से कविता के प्रति मेरी अभिरुचि गाढ़–गाढ़ प्रगाढ़ होती गई। जो समझ में नहीं आने वाली चीज होती थी, उनको भी समझने के प्रयास में उनके प्रति मैं ज्यादा आकर्षित होती गई। यहीं से मेरी कविता में रोमान आया। मेरी कविता में जो रोमांटिक स्पर्श है वह भी यही से इसी पढ़ने–लिखने के मूल्य के कारण आया। साहित्य के प्रति मेरी रुचि इतनी अधिक थी कि गणित में मुझे रेखा गणित के अंक से पास होना पड़ता था जबकि साहित्य में मुझे अधिकतम अंक मिलते थे। बचपन में महादेवी वर्मा के गीतों का प्रभाव मुझ पर अधिक पड़ा जबकि प्रसाद रचित 'आंसू' के दुखांत भावों की रचनाओं ने ह्रदय को स्पर्श किया। निराला के 'भिक्षुक' और 'भारति जय विजय करे' जैसे गीतों ने मन को उस समय आन्दोलित किया। अर्थात मुझे सभी कवियों की कविताएं और गीत को पढ़ना पसंद था परंतु गीत–लेखन में मैंने किसी का अनुकरण नहीं किया।

प्रश्न– आपके साथ मंचों पर और कौन–कौन से कवि–गीतकार होते थे?

उत्तर– उस दौर के सारे कवि–गीतकार बहुत प्रतिष्ठित और चर्चित रहे हैं। गीत–विधा में उन सभी का महत्वपूर्ण अवदान है। प्रसिद्ध गीतकार जानकीवल्लभ शास्त्री और उमाकांत मालवीय मंचों पर मेरे वरिष्ठ और मार्गदर्शक थे। रमेश रंजक, माहेश्वर तिवारी, सोम ठाकुर और उमाशंकर तिवारी आदि गीतकार साथ के थे। बुद्धिनाथ मिश्र मंच पर मुझसे कनिष्ठ गीतकार थे। बाद में नचिकेता भी आए। प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री और गीतकर्त्री महादेवी वर्मा के साथ भी मैंने मंच साझा की है।

प्रश्न– आपने महादेवी वर्मा के साथ काव्य–पाठ किया है और मंच साझा की है। कैसा अनुभव रहा? कोई विशेष बात जो अभी याद आ रही हो ?

उत्तर– मैंने उस जमाने के कई बड़े–बड़े कवियों, गीतकारों और साहित्यकारों के साथ मंच साझा किया है। एक बार आकाशवाणी–दूरदर्शन वालों ने लखनऊ में एक युवा लेखिका सम्मेलन आयोजित किया था। उसमें देशभर से तीन सौ के करीब कवयित्रियाँ आईं थीं। उन कवयित्रियों में मैं सबसे कम उम्र की थी। उस आयोजन में छठवें दिन 'नारी–विमर्श' पर एक सेमिनार का आयोजन किया गया था। मंच पर महादेवी वर्मा के साथ डॉ कमला रत्नम्, डॉ रमा सिंह, शशिप्रभा शास्त्री और मैं बैठी थी। बीज वक्तव्य महादेवी जी को देना था। अपने बीज वक्तव्य में महादेवी जी ने एक गलती कर दी (मेरे मातानुसार) । उन्होंने कहा कि– आज के समय में देश में जो अमानवीयता, हिंसा, क्रूरता, संबंधों का घालमेल आदि है, उसके मूल में मातृतत्त्व का ह्रास है। बाकी वक्ताओं ने महादेवी वर्मा के इस कथन के पक्ष या विपक्ष में ठीक ढंग से अपनी बात भी नहीं रखी। जब मेरी बारी आई तो मैंने कहा कि– 'महादेवी वर्मा ऐसी कवयित्री हैं जिनको पढ़–पढ़के सदियां कविता सीखेंगी,गायेंगी, कविता का मूल्य समझेंगी। परन्तु उनका यह कथन कि आज देश में अमानवीयता, हिंसा और क्रूरता का वातावरण मातृतत्त्व के ह्रास के कारण है अशोभनीय है। महादेवी जी का यह कथन एक अन्याय है और अक्षम्य है। उनका यह कथन माँ की प्रतिष्ठा को कम करने वाला है क्योंकि हर माँ सेठों– पूंजीपतियों की माँ, बहन, बेटी नहीं होती हैं। कुछ माँ ऐसी भी होती हैं जो पीठ पर बच्चों को बांधकर खेतों में धान रोपती हैं, ईट के भट्ठे पर बच्चों को छाती से चिपकाकर माथे पर ईंट ढोती हैं, जंगल में लकड़ी चुनने जाती हैं, स्वयं आधा पेट खाती हैं परंतु बच्चों को भरपेट खिलाकर सुलाती हैं। इसलिए माँ की संवेदना इतनी कातर नहीं हो सकती कि उसका ह्रास हो जाए। मैं उनके इस कथन का तिरस्कार करती हूँ।' पूरा सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। सभी ने मेरी बात का समर्थन

किया। कार्यक्रम के बाद महादेवी वर्मा जी से मेरी देर तक बातचीत हुई। उन्हें भी अपनी भूल का एहसास हुआ और वह भी मेरी बातों से सहमत हुईं।

प्रश्न— नवगीत में पारंपरिक गीत से क्या अलग है?

उत्तर— इसका उत्तर गीत के शिल्प से जुड़ा है। लोग जब नवगीत के शिल्प को लेकर आगे बढ़े तो पारंपरिक गीत पीछे छूट गया और वह पुराना लगने लगा। पारंपरिक गीतों में शिल्प की मर्यादा शिथिल थी। बिम्ब, प्रतीक, उपमान, मुहावरे यह सब नवगीत के अलंकार हैं। ये सब गीत में नहीं मिलेंगे। गीत बहुत सीधे–सपाट ढंग से लिखे जाते थे। उसमें व्यंजना नहीं होती थी। नवगीत ने पूरी तरह अभिधा, लक्षणा, व्यंजना को अलग कर काव्य शक्तियों का उद्धार कर दिया। नवगीत व्यंजनामूलक अधिक है। नवगीत में अभिधा का पूरी तरह तिरस्कार है। वह अभिधा को कविता मानता ही नहीं है। गीत मनः स्थितियों का काव्य है, उसमें शब्दों के ध्वन्यात्मक सौंदर्य और अनुगूंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व होता है। नवगीत गीत को नयी दृष्टि से देखने, सोचने और लिखने का गुरूतर कार्य है। अछूते बिंबों की उपस्थिति, उपमा, रूपक की ताजगी और भाषा की सादगी के कारण भी नवगीत पूर्ववर्ती पारंपरिक गीतों से अलग है। तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण नवगीत में तनाव, पीड़ा, पराजय, कुंठा और रंगीन सपनों की उपस्थिति अधिक दिखाई पड़ती है। नवगीत में मध्यवर्गीय त्रासदी अधिक है क्योंकि अधिकांश नवगीतकार मध्यवर्ग से आए थे। नवगीत का आगमन गीत रचना की अनिवार्य परिणति है, जिसके कारण नवगीत का तेवर भी पारंपरिक गीतों से भिन्न दिखाई पड़ता है। पारंपरिक गीतों की तुलना में नवगीत की पुनर्नवता को सभी ने एक मत से स्वीकार किया।

प्रश्न— जनगीत और नवगीत में मुख्य रूप से क्या अंतर हैं?

उत्तर — उन दिनों जो किसान और नक्सलबाड़ी आंदोलन हुआ, उसके प्रभाव में और मजदूरों के हौसले को बढ़ाने के प्रयास में जनगीत आया। जनगीत में गीत लिखने की शब्दावली और उसका मोटो अर्थात उद्देश्य दोनों बदल गया। नवगीत रचना का मुख्य वैचारिक आधार जहां आधुनिकतावाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद है, वहीं जनवादी गीत रचना का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय जीवन–दृष्टि और सर्वहारा विश्व– दृष्टिकोण से युक्त समाजवादी यथार्थवाद है। नवगीत के मध्यवर्गीय जन–जीवन की निराशा और असमंजस के बजाय जनगीत संघर्षशील मेहनतकश जनता की मुक्ति कामना का उद्घोष है। नवगीत जिस सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विसंगतियों और विघटन का एहसास कराता है, जनगीत उनकी उत्पत्ति के कारणों की तलाश करता है और मुक्त होने के रास्ते भी खोजता है। वैचारिक अंतर्वस्तु की उपरोक्त भिन्नता के साथ ही जनगीत का शिल्प, रूप, भंगिमा और तेवर भी नवगीत से अलग हैं। जनगीत में जाने–पहचाने और जनसंघर्षों के बीच से बिंबों और प्रतीकों का चुनाव किया गया। जनवादी गीत– रचना की रचना–प्रक्रिया काफी जटिल और दुहरी होती है। अनुभूति की सघनता, भावों की गहराई और आकार में संक्षिप्तता पर जनगीत में बल दिया जाता है। जनगीत में क्रांतिकारी वैचारिक अंतर्वस्तु को लोकप्रिय और सहज प्रभावी अंतर्वस्तु के साथ मिलाकर प्रस्तुत करना पड़ता है। नचिकेता जैसे कुछ उथले जनगीतकारों ने जनगीत में जबरदस्ती कुछ खास तरह के शब्दों का बार–बार प्रयोग किया है। परंतु विचार हथौड़ा से नहीं आता है और न क्रांति करछी–कुदाल से होती है। क्रांति विचार से होती है। विचार की भूमि ही क्रांति की जननी है। जनवादी गीतों में विचार से क्रांति लाने का प्रयास है, न कि हंसिया–हथौड़ा से। जनगीत ने आधी दुनिया को परिचालित किया। सामंतों और उच्च मध्यवर्ग से इतर यह पूरी दुनिया जनगीत की है। ये किसान–मजदूर, शोषित–पीड़ित, गरीब–कमजोर वर्ग ये सब जनगीत के केन्द्र में हैं।

प्रश्न— आप स्वयं को नवगीतकार मानती हैं या जनगीतकार?

उत्तर— यह बहुत पीड़ादायक प्रसंग है। इसके लिए मैंने बहुत मूल्य चुकाया है। जनगीत लिखने के लिए मैंने बहुत आलोचनाएं सुनीं। मेरे नवगीतों की प्रशंसा में जिस डॉ सुरेश गौतम ने कभी कहा था कि– शांति सुमन के नवगीत के आगे दूसरे नवगीतकार पासंग भर भी नहीं होते हैं, वही डॉ सुरेश गौतम ने मेरे बारे में लिखा

कि– शांति सुमन ने अपना बिंब अपने हाथों तोड़ा है, ये अब नवगीत नहीं जनगीत लिखने लगी हैं। यह बात उन्होंने व्यंग्य में कही क्योंकि शायद उनको मेरा जनगीत लिखना पसंद नहीं था और जनगीत की कोई परिभाषा उनके मन में नहीं थी। वस्तुत जनगीत को कमतर आंकने का कारण मजदूरों– किसानों पर गीत लिखने से रोकने का प्रयास था। सच्चाई यह है कि ये मजदूर, ये किसान नहीं रहेंगे तो केवल उच्च मध्यवर्ग और सामंत क्या करेंगे? मजदूरों– किसानों के दम पर दुनिया चलती है। इसलिए जनवादी गीत लेखन जरूरी था। मेरे गीत लेखन का आरंभ नवगीत लिखने से हुआ परंतु मैंने नवगीत और जनगीत दोनों ही लिखे हैं। तथा मेरे लिखे नवगीत और जनगीत दोनों को ही स्वीकृति और प्रसिद्धि प्राप्त हुई। बाद में लोगों ने यहां तक कहा कि एक शान्ति सुमन ही है जिसने नवगीत और जनगीत दोनों पर साधिकार अपनी कलम चलाई है।

प्रश्न– गीत में तुक अनिवार्य है? या क्या तुक गीत–नववगीत का अनिवार्य अंग है?

उत्तर– गीत में तुक का दूसरा परिप्रेक्ष्य है। गीत में जिसे तुक कहा जाता है, नवगीत में उसको टेक कहा जाता है। टेक नवगीत के लिए अनिवार्य नहीं है जबकि गीत के लिए वह (तुक) अनिवार्य है। गीत में जब तक तुक नहीं मिलेगा तबतक गीत नहीं होगा। जबकि नवगीत में जहां भी टेक मिलेगा, वहीं नवगीत अपने को प्रतिफलित कर लेगा।

प्रश्न– क्या इस समय गीत की धारा कमजोर लग रही है? इसके पीछे आपको क्या कारण लगता है?

उत्तर– नहीं! गीत की धारा कमजोर नहीं हुई है। गीत की उपादेयता थोड़ी कम हुई है। गीत में मानसिक व्यायाम ज्यादा होता है। कविता को पढ़कर हम जो समझते हैं, वही गीत को पढ़कर नहीं समझते हैं। अर्थात् जब कविता में सबकुछ गद्य की तरह बांच दी जाती है तो उसको हम आसानी से समझ लेते हैं लेकिन गीत को समझना पड़ता है। यही अंतर है। कई कवियों की कविता भी गीतात्मक लगती है क्योंकि उसमें भी छंदानुशासन का पूरी तरह अनुकरण किया जाता है। गीत–रचना में अनुभूति के साथ ही विचारों और समस्याओं को भी अभिव्यक्त करने की भरपूर क्षमता होती है। जिस रचनाकार में प्रतिभा और जीवन की गहरी पकड़ होती है उसके गीत सशक्त और सक्षम होते हैं। गीत विधा चिरन्तन है। आदिकाल से लेकर आज तक यह सतत प्रवाहित है। हर समय का अपना एक सच होता है और गीत की विशेषता है कि वह समय के साथ चलता रहा है। युगबोध के कारण गीत में परिवर्तन भी होते रहे हैं। समयानुकूल होना गीत के दीर्घायु होने का सबसे बड़ा कारण है।

प्रश्न– आपके गीतों में गांव–घर और पारिवारिक रिश्ते बार–बार आते हैं!

उत्तर– हाँ, मेरे गीतों में ये विशेषताएं खूब हैं। गांव,घर की पावन स्मृति और पारिवारिक रिश्तों का सौंदर्य मेरी रचनात्मक ऊर्जा के स्रोत हैं। इस तरह के गीतों से मुझे खूब प्रसिद्धि और प्रशंसा मिली। 'माँ की परछाईं–सी लगती/ गोरी–दुबली शाम/ पिता–सरीखे दिन के माथे/चुने लगता घाम', 'दरवाजे का आम–आंवला/घर का तुलसी–चौरा/ इसीलिये अम्मा ने अपना/ गाँव नहीं छोड़ा', 'धीरे पांव धरो/आज पिता–गृह धन्य हुआ है/मंत्र सदृश उचरो!/तू अम्मा के घर की देहरी/बाबूजी की शान/तू भाभी के जूड़े का पिन/भैया की मुस्कान'– आदि गीतों से मेरी विशिष्ट पहचान बनी।

प्रश्न– अपने संघर्ष के दिनों को किस प्रकार याद करती हैं? परिवार के सदस्यों का कितना सहयोग रहा?

उत्तर– मेरा जीवन संघर्षों से भरा रहा है। यह कहना ठीक होगा कि पूरा जीवन ही संघर्षमय रहा है। गांव में पढ़ाई से लेकर, विवाह, पीएचडी, नौकरी की भागदौड़, कवि–सम्मेलनों की यात्राएं, घर–परिवार, बच्चों की देखभाल, अध्यापकीय दायित्व – एक तरफ जहां ज़िन्दगी की पूरी यात्रा ही संघर्षों से भरी रही, वहीं दूसरी तरफ परिवार के लोगों का सहयोग भी मिलता रहा। मैं जीवन में जो कुछ भी हो सकी उसका बहुत सारा श्रेय मेरी दादी को जाता है। मेरे पति ने भी हर कदम पर मेरा भरपूर साथ दिया। मेरी मेधा को बचाने और बढ़ाने के लिए मेरे पति ने अपना सब कुछ खपा दिया। मेरी सुविधा के लिए उन्होंने अपनी नौकरी में कभी

प्रमोशन तक नहीं लिया। पुत्र अरविंद, पुत्री डॉ चेतना वर्मा, बहू डॉ विशाखा वर्मा के होने से मेरे घर–आंगन में रौनक है। शालीना,श्रेयसी, अपूर्व और ईशान मेरे तप के सुफल हैं।

प्रश्न– जीवन में साहित्य का विशेषकर गीतों की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है?

उत्तर – गीत ही है जो आदमी को श्रम करने की प्रेरणा देता है। जब हम थक जाते हैं, जब हम निराश और उदास होते हैं, जब हमको लगता है कि अब हम कहीं के नहीं रहे, वह जो निरुपाय वाली स्थिति है, उससे गीत हमारी रक्षा करता है। मनुष्य के जीवन में जन्म से लेकर मरण तक गीत की उपस्थिति है। हर्ष–उल्लास, सुख–दुख, पर्व–त्योहार आदि अवसरों पर भी आदमी गीत ही गाता है। इसलिए गीत की सीमा निर्धारित नहीं हो सकती। गीत असीम है। गीत व्यंजनाहीन अर्थात् व्यंजना से ऊपर है। व्यक्तिगत जीवन में गीत ने मुझे टूटने से बचाया है। गीत मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता और उपयोगिता अक्षुण्ण है। जब मर्यादा और अनुशासन आडंबर बनने लगे, संस्कृति धीरे–धीरे विदा होने लगे, विचार निर्माण के पूर्व ही समाप्त होने लगे, चुनौतियों से भरे ऐसे कठिन समय में गीतों में ही हमारा अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है, उसी में मनुष्यता सुरक्षित रह सकती है। इसलिए जीवन में गीत की व्यापक और महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रश्न– आपका पसंदीदा गीत जो आपके मन के बेहद करीब हो, जिसको आप गुनगुनाती हों?

उत्तर– मैंने बहुत सारे गीत लिखे हैं। मेरा एक बहुत प्रसिद्ध गीत है – 'केसर रंग रंगा मन मेरा/ सुआपंखिया शाम है/ बड़े प्यार से सात रंग में/ लिखा तुम्हारा नाम है।' यह गीत मुझे बहुत पसंद है। इस गीत को मैं बहुत गुनगुनाती थी। कवि सम्मेलनों के मंच पर भी लोग इस गीत को सुनाने की फरमाइश करते थे। मेरे गीत संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' में एक गीत है– 'फटी हुई गंजी ना पहने/खाये बासी भात ना/ बेटा मेरा रोते, मांगे/ एक पूरा चन्द्रमा।'– यह गीत भी मुझे बहुत प्रिय है। इसी तरह मेरा एक प्रिय गीत है– 'हाथों में एक दो मूंगफली/और कुछ अंतरंग बातें/सांसों में तह करके रख लें हम/पार्कों में हुई मुलाकातें।'– यह गीत भी खूब प्रसिद्ध हुआ। लोगों ने इस गीत के विषय में कहा कि प्रेम को महानगर के पार्कों में ले जाने वाली शान्ति सुमन हैं। इसका अर्थ यह कि चोरी–छुपे का काम नहीं होता प्रेम। अर्थात् प्रेम सामाजिक होता है।

प्रश्न– गीत के भविष्य को लेकर आप आश्वस्त हैं? गीत का भविष्य किस प्रकार दिखाई पड़ता है?

उत्तर– ये आग पर चलने के बराबर है। ऐसा इसलिए क्योंकि लोगों की, कवियों की, भावकों की, आलोचकों की, पसंद करने वालों की जो नयी पीढ़ी आ रही है, उसमें लोगों के पास गीत को समझने की मार्मिकता नहीं है। लोग अपनी संवेदना को उस खुरदुरी रास्ते पर ले ही नहीं जाना चाहते हैं कि वे उस बात को भी समझ सकें। इसलिए हमको लगता है कि गीत थोड़ा मर्माहत होगा। फिर भी गीत के चाहने वाले बने रहेंगे। आप जब किसी से प्रेम करते हैं और कोई कविता ढूंढते हैं तो वो प्रेमगीत ही होता है, वो कविता नहीं होती है। अगर कविता होती भी है तो गीत में जो मार्मिकता होती है; प्रभाव की क्षमता होती है, वह उस कविता में नहीं होती है। गीत–विधा में अपार संभावनाएं भी हैं। इसलिए गीत का भविष्य पूरी तरह सुरक्षित और उज्ज्वल है।

✿★✿

अद्वैतवेदान्ते मोक्षसाधनविमर्शः

डॉ. शशि भूषण भट्टः*

ब्रह्मणः अपरोक्षसाक्षात्कारादेव मोक्षः इति अद्वैतिनः। तस्मिन् ब्राह्मसाक्षात्कार नित्यानित्यवस्तुविवेकः इहामुत्रार्थफलभोगविरागः शमादिषट्कम्– शमदम उपरति तितिक्षा समाधान श्रद्धा मुमुक्षत्वं च साधानरूपेण वर्णिताः सन्ति, श्रवणमनन–निदिध्यासन इति अन्तरङ्गसाधनानि सन्ति।

ब्रह्मैवकं वस्तु नित्य तद् अतिरिक्त अखिलमनित्यमिति यथा श्रुतेः– **'नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम'[1] अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो।'[2]** तदितरानित्यत्वे च–

'यो वै भूमा तदमृतम्, यदल्पं तन्मर्त्यम्।'[3], 'नेह नानास्ति किञ्चन'[4]

भगवत् शङ्कराचार्यैः विवेकचूड़ामणिग्रन्थे उक्तं –

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवं रूपो विनिश्चयः।[5] अन्यत्
सोऽयं नित्यानित्यवस्नुविवेकः समुदाहृजः।[6]

विरागः– सदानन्द महोदयेन वेदान्नसारे उक्तं– **'ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादि विषयभोगानां कर्मजन्यतयाऽनित्यत्ववदामुष्मिकाणामप्यमृतादिविषयभोगानां अनित्यतया तेभ्यो नितरां विरतिरिहामुत्रार्थफल भोगविरागः।''[7]** सर्ववेदान्त्सिद्धान्तसारसंग्रहेऽपि उक्तं च–

ऐहिकामुष्मिकार्थेषु ह्मनित्यत्वेन निश्चयात्।
नैः स्पृह्यं तुच्छबुद्धया यत्तद् वैराग्यमितीर्यते।।[8]

विवेकचूड़ामणि ग्रन्थेऽपि उक्तञ्च –

तद्वैराग्य जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः।[9]
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि।[10]

क्रमप्राप्त शमादिषट्कस्य स्वरूपं प्रस्तूयते। शमस्तावच्छुणवादिव्यतिरिक्तिविषयेभ्यो मनसो निग्रहः। अर्थात् शमो नाम श्रवणदिव्यतिरिक्तेभ्यो निवर्त्यात्मन्येव श्रवणादिविषये मनसः स्थापनम्।

एकवृत्यैव मनसः स्वलक्ष्ये नियतस्थिति।
शमः इत्युच्यते सद्‌भिः समलक्षणवेदेभिः।"[11]

दमः – चक्षुरादि ब्राह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम् अर्थात् दमो नाम ज्ञानकर्मेन्द्रिय निग्रहः। भगत्वपादैः विवेकचूडामणौ उक्तं–

विषयेभ्यः परावर्त्यं स्थापनं स्वस्वगोलके।[12]
उभयेषामन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः।।[13]

ब्रह्मसाक्षात्कृतिसाधनभूत श्रवणमननादि अतिरिक्त ब्रह्मशब्दादि विषयेभ्यः चक्षुः श्रोत्रादिन्द्रियाणां निग्रहो दमः।

उपरतिः – **वेदान्तसारे सदानन्द महाभागेन उक्तं निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यः उपरमणमुपरति अथवा विहितानां कर्मणा विधिना परित्यागः।**[14] आचार्य शङ्करेण सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहेऽपि उक्तं च–

***अतिथि प्राध्यापकः, चन्द्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभङ्गा–बिहारः।**

उपरतिशब्दार्थौ ह्युपरमण पूर्वदृष्टवृतिभ्यः।'[15]

मनो रूप अन्तरिन्द्रियनिरोध शमः, दमः बाह्येन्द्रियनिरोधो। उपरति अपि निरोधविशेषः, त्रयाणां समष्टिरूपेण कार्यं कुर्वन्ति।

तितिक्षा – शीतोष्णादि दन्द्व सहिष्णुता। "विवेकचूडामणौ –भगवत्पादेन उक्तं च–

सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते।।"[16]

समाधानम्– निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुविषये च समाधिः समाधानम्। विवेकचूडामणौ उक्तं–

सर्वदा स्थापन बुद्धेः शुद्ध ब्रह्मणि सर्वथा।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चितस्य लालनम्।[17]

श्रद्धा–सदानन्द योगीन्द्रमहोदयेन वेदान्त्सारे उक्तं–

गुरुपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा। सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह नामक ग्रन्थेऽपि उक्तं च–

गुरुवेदान्तवाक्येषु बुद्धिर्यानिश्चयात्मिका।
सत्यमित्येव सा श्रद्धा निदानं मुक्तिसिद्धये।। [18]

मुमुक्षत्वम् – मोक्षेच्छा मुमुक्षत्वम्। संसारानलेन दह्यमाने पुरुषो यथा कलत्रपुत्रादिकं परित्यज्य स्वतापोपशमनार्थमेव ब्रह्मतादात्म्यभावस्य तीव्रच्छा युक्तो भवति, सा एव मुमुक्षा। उक्तञ्च–

अहङ्कारादिदेहान्तान्बन्धानज्ञानकल्पितान्।
स्वस्वरुपावबाधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता। ।[19]

एतद् अधिकारी पुरुषः ब्रह्मनिष्ठ गुरुमुपश्रृत्य श्रवणामनननिदिध्यासनस्य आश्रयं गृह्णाति। आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतष्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः बृहदारण्यकश्रुतौ ब्रह्मसाक्षात्कारमनूद्य तत् साधनत्वेन श्रवणादिं विधानात्।

विवरणानुयायिनां मते – ऐतेषां मते श्रवणं नाम वेदान्तानामद्वये ब्रह्मणि तात्पर्यावधारणानुकूलः मानसः व्यापारः। मनने शब्दावधारितेऽर्थे मानान्तरविरोधशंकायां तन्निराकरणानुकूलतकजन्यमानसव्यापारः। निदिध्यासानो नाम अनादिदुर्वासनया विषयेषु आकृष्यमाणः चित्तस्य विषयेभ्यः अपकृष्य आत्मविषयक स्थैर्य्यानुकूल मानसव्यापारः। भामती प्रस्थाने तु श्रवणो नाम आगमाचार्थोपदेशनम् आत्मज्ञानम्। मननं तु अनुमित्यात्मकं ज्ञानम्, निदिध्यासने अपि ज्ञानमेव।

श्रवणं नाम षड्विधलिङ्रशेषवेदान्तानामद्वितीये वस्तुनि तात्पर्यावधारणम्। लिङ्गानि तूपक्रमौपसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थावादैपपत्त्याख्यानि। मननं तु श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनोवेदान्तानुगुणयुक्तिभिरनवरतमनुचिन्तनम्। विजातीयदेहादि प्रत्ययरहिताद्वितीय वस्तुसजातीयप्रत्ययप्रवाहो निदिध्यासनम्।

विवरणप्रमेय संग्रहे उक्तं च–

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः
ज्ञात्वा च सततं ध्येय एते दर्शन हेतवः।
तत्र सर्वाङ्गनिष्ठस्य प्रत्यग् ब्रह्मैकगोचरा।
या वृत्तिर्मानसी शुद्धा जायते वेदवाक्यतः।।
तस्यां या चिदभिव्यक्तिः स्वतः सिद्धा च शाङ्करी

तदेव ब्राह्मविज्ञानं तदेवाज्ञाननाशनमिति।।[20]

अद्वैतमते तु ज्ञानेनैव मोक्ष इति। उक्तञ्च –

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।।[21]

सदर्भ सूचीः–

1. श्वेताश्वतरोपनिषदि 6/13
2. कठोपनिषद् 1/2/18
3. छान्दोग्योपनिषदि 7/23/1
4. बृहदारण्यकोपनिषदि 4/4/19
5. विवेकचूडामणौ–20
6. विवेकचूडामणौ – 29.
7. वेदान्तसारे–साधनचतुष्टय प्रकरणम्
8. सर्वदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहः, श्लोक – 22
9. विवेकचूडामणौ– 29.
10. विवेकचूडामणौ – 22
11. सर्ववदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहे, श्लोक 75.
12. विवेकचूड़ामणौ – 23
13. विवेकचूडामणौ – 24.
14. वेदान्तसारे, साधन–चतुष्ट्य प्रकरणम् 5.
15. विवेकचूडामणौ 24 सर्ववेदान्त सिद्धान्तसारसंग्रहः, श्लोक – 205,
16. विवेकचूडामणौ – 25.
17. विवेकचूडामणौ –2.27.
18. सर्ववेदान्त सिद्धान्तसारसंग्रह, श्लोक – 210.
19. विवेकचूडामणौ – 28.
20. विवरणप्रमेयसंग्रह,
21. कठोपनिषदि 2/3/15,

A Study on The Higher Secondary Students' Achievement in Their Chemistry in Relation to their Learning Habits

Suresh B*

Dr. G Vanmathi**

Abstract : *Learning entails devoting one's mental resources to the quest for information. There is no magic key that can instantaneously and substantially alter learning habits. However, there is little doubt that one of the current investigation's goals is to examine the levels of achievement in Chemistry in upper secondary students. From the complete sample of higher secondary students, the following conclusion can be drawn: a significant majority of students exhibit a remarkable level of accomplishment in Chemistry as evidenced by their scores surpassing the average level. Furthermore, it can be observed that the majority of higher secondary students can be classified within the category of high achievement this investigation aims to observe the levels of learning habits of upper secondary students in connection to their learning habit scores. According to the statistics, the majority of upper secondary students have great study habits. The purpose of the study was to investigate the Achievement in Chemistry among Higher Secondary school students. The study also aimed to find out the correlation between the dependent variables of the study.*

Keywords: *Learning habits, Achievement in Chemistry, Teacher, Students, Higher Secondary, variables.*

Introduction : In twenty first century, achievements and success of any country depends on its ability to create and market complex knowledge as faster with deep understanding in a scientific way. Any country needs both academic institutions as well as industry want that acquire new complex knowledge in technology era. Knowledge can be applied more effectively for innovative ways and strategies in diverse field in solving practical problems and use on fieldwork (Rona F. Flippo & David C. Caverly, 2000). It's possible when people work effectively on reactions of matters around them with deep understanding of complex knowledge.

A branch of knowledge which studies of the Matter, its compounds, its substances, its particles, its Reactions and reactions phenomena of whole matter. Study of the reactions of the matters is complex knowledge of Chemistry. Chemistry, as a school subject is one of the most important science subjects in higher secondary school education. It equips students with a body of daily life's complex knowledge of reactions to make them functional and self-balance with socially in the fast-changing world (Chandana Aditya and Radha Ghosh, 2014). It helps students to realise the value of their environment and its chemical reactions. It is the students who need to appreciate and develop a sense of responsibility towards their own environment and society. So, as teacher find ourselves on highest tip of a complex knowledge scenario that demands superior pedagogical and anagogical practices. The emerging complex knowledge driven society is placing ever increasing demands on its teachers to satisfy its educational requisites and aspirations to students.

In this scenario, teaching-learning processes along with a suitable, relevant and appropriate plan make it indispensable. This shall lead to an awakening of curiosity, simulation of creativity, fostering of requisite skills and the development of interest, attitude and values within the educational system.

In general, education refers to the transfer of knowledge—through teaching, training, or research—of a group of people's skills and habits from one generation to the next. Although it can also be autodidactic, education usually occurs under the supervision of others. Experiences that have a defining impact on an individual's thoughts, emotions, or behaviours can be classified as educational. Typically, education is

---

*** Research Scholar, Dept. Of Chemistry, Kamaraj College, Thoothukudi.**

**** Associate Professor in Chemistry, Kamaraj College, Thoothukudi**.

broken down into phases, like pre-school. education levels include elementary, middle, and high school, as well as college, university, or apprenticeship. Certain governments have recognized the right to an education.

Chemistry as a School Subject : Chemistry is one of the part of Science. Science is the root of Chemistry Subject. So, before one knows about characteristics and nature of the Chemistry subject in detail, need to know about Science. Science (from the Latin, sciatica‟, and meaning is "knowledge") usually describes the effort to understand how the universe works through the scientific method, with observable evidence as the basis of that understanding; a way of understanding the material world through thought and experimentation. The sciences tend to be positivistic in their approach to truth and knowledge, in contrast to the humanities which tend toward relativism.

Science is not just a subject but it is an arranged knowledge and a well-defined face like a complex molecule crystal. Hence, science does not have a single definition. However, many scientists, researchers, and philosophers made attempts to define science in their own ways. In the simplest form of natural science can be defined as "what scientists do". There are some other definitions of science as follows:

- Conant (1951) views Science is an interconnected series of concepts and conceptual schemes that have developed as a result of experimentation and observation.
- Fitz Patrick (1960) defines Science as a cumulative and endless series of empirical observations which result in the formation of concepts and theories, with both concepts and theories being subject to modification in the light of further empirical observations. Science is both - body of knowledge and the process of acquiring knowledge.
- Lederman (1983) stated that Science is a dynamic, ongoing activity, rather than a static accumulation of information.
- Wilson, Edward (1999) defines Science is a systematic enterprise that builds and organizes knowledge in the form of testable explanations and predictions about the universe.

The definitions of science show the nature of science. Science is dual in nature; product and the process are the main aspects of science. Both the aspects are interconnected with and interdependent on each other. The product aspect of science acknowledges science as an accumulated and systematized body of knowledge whereas the process aspect of science comprises of scientific method of inquiry and scientific attitudes. Therefore, the process aspect always remains in search of truth by adopting the scientific methods which are known as reliable, valid, objective, unbiased and verifiable. There is nothing wrong in saying that science is an overall product of human activity in the form of a systematic and organized body of knowledge. It is the product of all facts, connected with our information, concepts, generalizations, laws and theories framed on the basis of vast fund of collected knowledge.

Modern science is commonly divided into three major branches that consist of the natural sciences, social sciences and formal sciences. Each of these branches comprises various specialized yet overlapping scientific disciplines that often possess their own nomenclature and expertise. Both natural and social sciences are empirical sciences as their knowledge is based on empirical observations and is capable of being tested for its validity by other researchers working under the same conditions.

Modern science is typically sub-divided into:

- The Natural sciences, which study the material universe;
- The Social sciences, which study people and societies;
- The Formal sciences, which study logic and mathematics.
- The Applied sciences, considered as disciplines in engineering and medicine.

A perfectly adequate definition as late as the 1930s, when natural science (the systematic knowledge of nature) seemed quite clearly divisible into the physical and biological sciences, with the former being comprised of physics, chemistry, geology and astronomy and the latter consisting of botany and zoology. This classification is still used, but the emergence of important fields to study such as oceanography, botany, meteorology, pharmacy and biochemistry (Russell, 1980).

Chemistry is a dynamic and all-encompassing subject. It is a distinct and dynamic science and science discipline that deals with the study of matter. Chemistry is the branch of Science that studies the structure of substance and its partials, the features, the inhabitants, and the phenomena of the Compounds. It is study of the matter's physical features, of the distribution of substances on the space, earth and its atmosphere, biosphere, and of human activity as it affects and is affected by these, complex balance things between molecules in different matters, including the distribution of mass and energy.

- In 1661, the Physicist Robert Boyle, defined the term chemistry as a subject of the material principles of mixed bodies.
- In 1663, the chemist Christopher Glaser described „Chemistry" as a scientific art, by which one learns to dissolve bodies, and draw from them the different substances on their composition, and how to unite them again, and exalt them to a higher perfection.
- In 1837, Jean-Baptiste considered the word „Chemistry" to refer to the science concerned with the laws and effects of molecular forces. This definition further evolved by Linus Pauling (1947) that means the science of substances: their structure, their properties, and the reactions that change them into other substances - a Characterisation.
- In 1998, Raymond Chang broadened the definition of "chemistry" to mean the study of matter and the changes it undergoes. Hoffman introduced the term transformation for chemical reactions especially in organic chemistry.

Chemistry as subject is the study of molecules: the building blocks of matter. It is central to our existence, and leads our investigations into the human body, Earth, food, materials, energy, and anywhere and everywhere in between. The chemical industry, supported by chemistry research, underpins much of our economic progress, and provides wealth and prosperity for society (Oliver, J. and Paul, M., 2018).

The definitions of Chemistry display the nature of chemistry. Chemistry has many basic topics and principles at Higher Secondary level. Those are atoms and molecule, chemical bonding, state of matter, thermodynamics, equilibrium, periodic table, chromatography, etc. All are specific in nature; this equilibrium and thermodynamics topics are in calculative in nature; Periodic table has its particular nature, its base on element and it's characteristic; State of matter has a compound structure and reactivity with other element in manner. All are an integral part/area of basic Chemistry and it's dynamic in nature.

Importance of Chemistry as a school subject : NCF (2005) stated that Science should be introduced as separate discipline at the higher secondary stage. Exploring disciplines and approaching problems and issues from rich interdisciplinary perspectives are possible at higher secondary stage. The current two streams, academic and vocational, being pursued as per NPE-1986, may require a fresh look in the present scenario. The curriculum load should be rationalised to avoid the steep gradient between secondary and higher secondary syllabi. At this stage, the core topics of a discipline, taking into account recent advances in the field, should be identified carefully and treated with appropriate rigour and depth. The tendency to cover a large number of topics of the discipline superficially should be avoided." Chemistry is one of the subjects of Science discipline at higher secondary stage.

Chemistry is a very wide and interesting subject, which touches on most other subjects such as the biochemistry and environmental Chemistry. In higher education, students learn about Chemistry mainly to pursue a career in this discipline. However, the aim of teaching Chemistry in higher secondary education is to give students necessary knowledge and skills to understand reactions of the matter as their home and utilize its resources sustainably during their lifetime. At present, Chemistry is one of the important subjects in the school curriculum. Chemistry is attached with such subjects as biology, physics, environment, mathematics, and derived other sciences (i.e. bio-chemistry, environmental chemistry, etc.). The subject matter of Chemistry includes study of compounds around environment. Chemistry has a very wide scope unparalleled by any other subject. National Policy on Education (2016) committee stated on Evaluation that to crack the various prestigious examinations like IIT, JEE, AIEEE, AIPMT, NEET etc. for better carrier and research in chemistry for better human life.

Chemistry is a science, it tries and develops good chemist who may be able to solve various

medicinal, industrial, economic and material problems of the country and world. The importance of Chemistry can be understood more clearly by considering the effect of Chemistry teaching using chemistry use in daily routines on man as a human being, as an administrator, and as a Chemist. The practical, economic, social, cultural and intellectual importance is considered while teaching Chemistry at the higher secondary level.

Practical importance: Knowledge of Chemistry prepares the students to face various situational problems of daily routine. If a student is familiar with the natural chemicals of a country, its biosphere components, natural resources, mineral wealth, medicines its preparations, use of chemicals of day to day life it becomes easier for him to plan the future. Such a knowledge can be of much help to would be industrialists of a country and the students of Chemistry interested in setting up an industry after the completion of education can make a better selection for the methods of his industrial unit keeping in mind the daily life chemicals needed.

Social Importance: Applications of chemical science have contributed significantly to the advancement of human civilization. With a growing understanding and ability to manipulate chemical molecules, the post-World War II chemist was considered a societal problem solver. They synthesized crop-enhancing agricultural chemicals to ensure a constant and viable food supply. They played a significant role in the eradication of deadly diseases by developing life-saving pharmaceuticals and chemical pesticides and Vaccines. Chemists also developed innovative plastics and synthetic fibres for use in a both industrial and consumer product (University of Michigan, 2018). Knowledge of Chemistry helps students in developing an appropriate social outlook and hence to develop a collaboration for the national of other countries. It also makes students -broadminded.

Cultural and intellectual importance of Chemistry: Knowledge of Chemistry helps students in acquiring knowledge about the cultural activity and intellectual life in scientific way of a particular country. Thus, helps them. Knowledge of Chemistry also helps students in developing their power of imagination and also encourages them to find out the cause and effect of various natural phenomena. According to Duvarci (2010) "Chemistry develops students‟ way of thinking in a way that they use scientific method. Then, they can use these thinking abilities they gained in the chemistry class in any problem in their life. Also, students‟ critical thinking abilities can be improved by chemistry. For, this reason chemistry should be taught".

Importance in understanding other subjects: It exhibits a correlation with all other school subjects. Knowledge of Chemistry helps the students in understanding various other subjects like Agriculture, Mathematics, Biology, Physics and Statistics etc. Various historical events have been influenced by Chemical factors. Knowledge of Chemistry is also essential to acquire a thorough and proper knowledge of material science (pure science). Knowledge of Chemistry also helps to properly understand the subject matter of physics and Biology too. Chemical inquiry involves asking particular kinds of questions and using spatial data to answer those questions, rather than the rote memorization of isolated facts. Thus, we find that Chemistry occupies an important place in various fields of life.

Knowledge of Chemistry also inculcates sensitiveness to the chemical pollutions and environment. Chemistry is relevant for both the students who are likely to continue to the Chemical science research and those who would not proceed in the education system. Hence teaching of Chemistry occupies an important turning role in higher secondary education.

Objectives of Chemistry at Higher Secondary Level

The Objectives of Chemistry at Higher Secondary Level are derived from different sources as follows (NCF, 2005; Khirwadkar, 2007; Johnstone, 2006 and Mani, 2015):

- To attain desirable proficiency in the specialized areas of Chemistry at higher secondary level.
- To acquaint them with the latest concepts and advancement in these specialized in chemistry as branch of Science.
- To develop scientific attitude and scientific thinking.
- To develop scientific values such as honesty, accuracy, tolerance, respect for natural products and their properties.

- To develop laboratory skills in chemistry.
- To develop safety consciousness in practicing chemistry in school and life.
- To develop specific skills- calculation, observe, clean apparatus use of equipment etc.
- To provide a sound foundation preparing for higher education.

Teaching Chemistry in classroom : Chemistry teacher has taken task to deliver the prescribed curriculum - the objective stock of Chemistry knowledge through different methods of teaching. In the traditional Chemistry teaching method in the classroom teacher delivered lecture and the students passively watching and listening. The students are made to work on exercises individually, made assignments alone, and no scope for interaction within class students. The traditional method of teaching Chemistry is teacher-cantered and focuses mainly on what the teacher does. Students‟ activities usually provided as a supplement to the planned delivery of content in prescribed curriculum. In contrast, methods rely heavily on the behavioural and cognitive learning methods. These methods focus mainly on what the students do.

Students from different populations need their diverse educational and technical advance methods demands on teachers in areas for which they were formally held accountable. If students‟ learning styles and teachers‟ teaching styles not match, then Problems occur. This has led to an increased emphasis on the development of student's ability to think rather than the teacher getting them to learn the content of subjects taught through mainly rote learning in this present scenario.

Sirhan (2007) said that the logical sequence of the content, language and communication, concept formation and lack of motivation creates problems in teaching. Through the proper planning of the curriculum and the instructional strategy, the problems in the teaching and learning of Chemistry can be solved.

Hence, today there is a need to ensure that the teacher is not only exposing the students with information but also structuring the content, organizing the data and sensing the problems. The teacher should also organize activities so that students can in turn process the information more effectively and make better and more rational decisions for higher quality learning (Akani, O. 2017). Twenty-first century classrooms challenge traditional, teacher-centred methods to meet the increasingly diverse needs of students and the required for increase an academic achievement.

Achievement : The recognizable operations that students are required to complete on the course-specific curriculum materials are referred to as "achievement" in this context. This term has a wide connotation. It does not indicate the marks alone secured by students in tests and examinations. It represents the totality of the academic gains acquired within the school and outside it, too. It includes the gains acquired through curricular as well as co-curricular activities involving community-service-oriented programmers, too. Thus, Achievement includes the Cognitive, Affective, and Psycho-motor components. But, in schools, only certain aspects of the cognitive component alone are measured to indicate the Achievement of the students (Balfakih, N. 2011).

Achievement in Chemistry : Achievement is the act of accomplishing or finishing. It can be defined as the act of acquiring knowledge, skills, ideas or understanding over and above those which already exist. It is thought of as a set of possible actions, an addition of ideas or skills, a reordering of ideas, or 9 an acquisition of concepts. The achievement requires learners to be involved in three distinctive set of process.

- *Internalization:* the processes which enable ideas or knowledge to enter the mind from an external source;
- *Internal processes:* those processes which enable the ideas or knowledge acquired to be compared or contrasted or integrated in some way with those which already exist;
- *Externalization:* the processes which enable ideas or knowledge or skills to leave the mind and to be recognized by other.

Achievement in Chemistry is something accomplished successfully, especially by means of exertion, skill, practice or perseverance, in relation to the prescribed Chemistry syllabus.

Learning Habits : Learning is the process of dedicating one's mental resources to knowledge acquisition. There isn't a secret formula that can make learning habits instantly and noticeably better. However, there is no denying that learning habits can suddenly and noticeably improve (Chandana Aditya and Radha Ghosh, 2014) However, there's no denying that learning habits can be gradually strengthened. Because they lack study skills, students do not enjoy attending school. Students must not only be engaged in the subject matter they are studying but also be aware of effective learning strategies, in order to acquire knowledge efficiently (Akhani, P et al., 1999). Even the most intelligent student cannot show their best if they do not possess sound Learning habits. Since the efficient acquisition of knowledge depends on the methods of acquiring it is important and desirable (Azikiwe, U, 1998). At all levels of education, it is essential to provide good family environments for the students. It is essential to create, maintain, respect, feel, control, regulate, and develop a family environment for healthy learning habits family environment helps the students to learn, participate, in cultural activities, communicate, express, adjust, knowledge, behave, etc., (Bliss, L.B., & Mueller, R.J, 1987)

Learning Chemistry : Classrooms at all levels of education are places which can only be understood 'as a dynamic conceptual ecology' (Ramdas, B. 2020) where various social, cultural and intellectual forces interact in ways that are not always predictable. Many interactions are at best contrasting but in many cases are in fact contradictory. Meaningful learning in such a dynamic aspect is premised on the assumption that students' worldviews are congruent with those of the chemistry as it is taught. Without some shared understanding of the culture of classrooms both teachers and students live in quite different worlds (Crede, M., & Nathan R Kuncel, 2008). Currently most teaching of chemistry is based on an objectivist view of knowing and learning, and holds true that propositions can be tested through methodologies that transcend the subjective limitations of individuals to test such propositions and thereby ascertain absolute truths. Traditional chemistry teaching has subsequently focused on the direct transmission of these truths.

Innovative methods have frequently been developed first at secondary level, where awareness of the results of pedagogical research is more prevalent, and have often been slow to migrate into higher education. Indeed, it is remarkable how little attention, until recently, has been paid by university teaching staff to educational principles established by research, mostly during the last century. Only a minority of chemistry graduates embarks on a laboratory-based career. A modern practical course must therefore cater for those graduates not requiring laboratory techniques and manipulative skill. Inquiry, discovery, and problem-based approaches usefully extend the range of learning outcomes, and their advantages and disadvantages are listed. However, many graduates require research competencies – interrelated knowledge, skills and attitudes, for their future careers, and so it is desirable to know how to develop them. Most undergraduate courses already include mini-projects and inquiry based laboratory work, but some alternatives are also discussed and exemplified.

The importance of communication among students as well as with teaching staff is recognised in many innovative teaching methods as a means of improving collaborative learning. A number of cooperative learning projects, in both classroom and laboratory, are described. Many methods also provide space for reflection on learning, and in most it is expected that students will take responsibility for their own learning and become independent learners in the process. (Michael Gagan, 2010)

According to Jack Holbrook, 2005, the following table gives a comparison illustrating the differences in emphases between 'chemistry through education' and 'education through chemistry'.

Education Through Chemistry

- Learn fundamental chemistry knowledge, concepts, theories and laws.
- Undertake the processes of chemistry through inquiry learning.
- Gain an appreciation of the nature of science.
- Undertake practical work and appreciate the work of scientists.
- Develop positive attitudes towards chemistry and scientists.
- Acquire communicative skills related to oral, written and symbolic/tabular/graphical formats. ¬ Undertake decision making in tackling scientific issues.

- Apply the uses of chemistry to society and appreciate ethical issues faced by scientists.
- Learn the chemistry knowledge and concepts important for understanding and appreciating socio-scientific issues within society.
- Undertake investigatory scientific problem solving to better understand the chemistry background related to socio scientific issues within society.
- Gain an appreciation of the nature of science.
- Develop personal skills related to creativity, initiative, safe working, etc.
- Develop positive attitudes towards chemistry as a major component in the development of society and scientific endeavors.
- Acquire communicative skills related to oral, written and symbolic/tabular/graphical formats.
- Undertake socio-scientific decision-making related to issues arising from the society.
- Develop social values related to becoming a responsible citizen and undertaking chemistry-related careers

Objectives Of The Study : The following are the objectives formulated by the investigator for the present study.

1. To study the higher secondary students' level of achievement in Chemistry.
2. To study the higher secondary students' level of learning habits.
3. To study if there is any significant difference in achievement in Chemistry between male and female higher secondary students.
4. To study if there is any significant difference in achievement in Chemistry between the higher secondary students studying in the schools located in the rural area and in the urban area.
5. To study if there is any significant relationship between higher secondary students achievement in Chemistry and their learning habits.

Sample And Limitation Of The Study : ***Only Students Enrolled In Higher Secondary Schools In Tamil Nadu State's Thoothukudi District Were Included In The Study.*** This research study has been limited by the following few factors as any other research at this level. The sample chosen has been restricted to only 200 higher-secondary students. Of these two hundred students, 100 were selected from government schools and 100 from matriculation schools. All the students were selected randomly.

Variables Of The Study : In this study, the researcher has selected the following demographic variables.

1. Gender (male/female)
2. Name of the School (Government / Metric)
3. Locality of the School (Urban / Rural)
4. Residency in Students (Urban / Rural)
5. Medium of the institution (Tamil / English)

The dependent variables in this study are the student's academic achievement and study habits.

Construction Of Research Tool : The tool that has been used in the present investigation was the Study Habits Inventory (SHI) by the investigator for the achievement in Chemistry. Half-yearly marks in the Chemistry subject secured by the samples were collected by the investigator.

Copies of this tool have been administered to the sample of 200 higher secondary schools chosen for the study. There are 45 assertions in this inventory; some of them show positive behaviours, while others do not. There are three choices for each statement: "Always," "Rarely," and "Never." The subjects' responses were scored by giving the two sets of items numerical values or arbitrary weights. In contrast, the negative statements acquired a score of 1, 2, and 3 for responses that varied between "Always" to "Never," while the positive statements received a score of 3, 2, and 1 for responses ranging from "Always" to "Never." Additionally, there are 18 negative and 27 positive remarks.

Results:

Table 1: Achievement In Chemistry

S. No	Sample	Category	N	Mean	S.D	Calculated t-value	Significant at 0.05 level
1.	Residence	Students Residing in rural area	113	68.27	12.52	6.47	Significant
		Students Residing in urban area	87	72.90	72.90		
2.	School Locality	Students Residing in rural area	116	68.65	13.08	6.19	Significant
		Students Residing in urban area	84	78.75	9.99		

The table shows the Mean, SD, and 't' values of the sub-samples in response to the level of achievement in Chemistry. Since the calculated corresponding values (6.47) and (6.19) are > the table value, it is interpreted that there is a significant difference between the average scores of the students based on the Residency and locality of the school.

Table 2: LEARNING HABITS

S. No	Sample	Category	N	Mean	S.D	Calculated t-value	Significant at 0.05 level
1.	Residence	Students Residing in rural area	113	115.20	4.12	6.90	Significant
		Students Residing in urban area	87	110.31	5.55		
2.	School Locality	Students Residing in rural area	116	114.97	4.13	6.13	Significant
		Students Residing in urban area	84	110.45	5.77		

The table shows the Mean, SD, and 't' values of the sub-samples in response to their level of Learning Habits in Chemistry. Since the calculated corresponding 't' values (6.90) and (6.13) are > the table value, it is interpreted that there is a significant difference between the average scores of students based on Residency and Locality of the School.

Discussion And Important Finding Of The Present Investigation

1. The majority of students in higher secondary demonstrate a high degree of proficiency in Chemistry. Their effectiveness is also observed with regard to the sub-samples.
2. The majority of the higher secondary students show good study habits. This pattern is also observed with regard to the sub-samples.
3. Regarding their achievements in Chemistry, higher secondary students living in rural and urban areas differ significantly from one another.
4. The academic performance of upper secondary students attending schools in rural and urban areas varies significantly when it involves Chemistry.
5. Regarding their study habits, higher secondary students living in rural and urban areas differ significantly from one another.
6. Regarding their approaches to learning, upper secondary students attending schools in rural and urban areas differ significantly.

7. This study proves that learning habits is suitable for chemistry subject in addition to conventional teaching. For learning certain concept areas, teachers of chemistry should be encouraged to use learning habits to explain concepts well.
8. There is need to provide training in learning habits methods like case study discussions, student-moderated discussion, collaborative presentations, games and demonstration. Learning packages are available in web sites for this purpose.
9. Basic elements of learning habits like taking responsibility for members own learning and critical thinking, engaging in debates and discussion have to be demonstrated and rigorous training has to be given.
10. It is important to balance the groups by assigning mixed ability members; high average low achievers based on earlier academic achievement can be placed in each group.
11. The teacher should facilitate equal participation of every group member in activity. If activities are not properly designed, collaborative learning method can allow some members of group dominate while the others remain passive and inactive.
12. Learning habits refers to an instruction method in which learners at various performance levels work together in small groups towards a common goal. The learners are responsible for one another's' learning as well as their own.
13. Learning habits is a relationship among learners that requires positive interdependence, individual accountability, interpersonal and skills, face – to - face primitive interaction and processing.
14. The abstract nature of chemistry is intrinsic to the subject but teachers have to influence on the way the subject is taught and both teachers and students can mould the attitudes to enhance examination performance.
15. Teachers need to go beyond teaching facts / guiding students to acquire isolated scientific concepts.
16. Curriculum planners and developers should guide teachers further from teaching facts and concentrate more on teaching concepts to make syllabus coverage more manageable. Teaching and assessment in science is now expected to aim at the development of students higher order cognitive skills

Conclusion : Students learn to relate to their peers and other learners as they work together in group enterprises. This can be especially helpful for students who have difficulty with social skills. They can benefit from structured interactions with others and actively involving students in learning. Achievement in Chemistry and their Learning Habits is a personal philosophy, not just a classroom technique. In all situations where people come together in groups, it suggests a way of dealing with people which respects and highlights individual group members' abilities and contributions. The underlying premise of the learning is based upon consensus building through cooperation by group members, in contrast to competition in which individuals best other group members. The learning practitioners apply this philosophy in the classroom, at committee meetings, with community groups and generally as a way of living with and dealing with other people.

When students are working in pairs one partner verbalizes his/her answer while the other listens, asks questions or comments upon what he/she has heard. Clarification and explanation of one's answer is a very important part of the collaborative process and represents a thinking skill. Students who tutor each other must develop a clear idea of the concept they are presenting and orally communicate it to their partner. Meta-cognition involves student recognition and analysis of how they learn. Meta-cognition activities enable students to monitor their performance in a course and their comprehension of the content material. This includes detecting errors and learning how to make corrections while monitoring one's performance.

Normally the Achievement in Chemistry and their Learning Habits approaches learning from a student centred philosophy by encouraging students to take responsibility for their learning by involving students throughout the class and encouraging their collaboration in group efforts outside of class. The teacher serves as a resource and facilitator rather than as an expert. It is not a passive role for the teacher.

Achievement in Chemistry and their Learning Habits requires a great deal of planning and preparation on the part of the teacher to develop activities which will help guide students through the

curriculum. The effect is to begin to elevate students to the teachers level and create a high expectation that they have the ability to obtain understand knowledge themselves. Achievement in Chemistry and their Learning Habits develops the students are taught how to criticize ideas, not people and it sets high expectations for students and teachers; it promotes higher achievement and class attendance as well as the students stay on task more and are less disruptive. Form this type of learning, greater ability of students to view situations from others' perspectives i.e., development of empathy. It creates a stronger social support system and more positive attitude towards teachers, principals and other school personnel by students and creates a more positive attitude by teachers toward their students.

Achievement in Chemistry and their Learning Habits addresses learning style differences among students and it promote innovation in teaching and classroom techniques as well as their classroom anxiety is significantly reduced and test anxiety is significantly reduced. This classroom resembles real life social and employment situations and the students practice modelling societal and work related roles. The Collaborative Learning is synergistic with writing across the curriculum and the activities can be used to personalize large lecture classes.

The skill building and practice can be enhanced and made less tedious through Achievement in Chemistry and their Learning Habits activities in and out of class. Those activities promote social and academic relationships well beyond the classroom and individual course. Collaborative Learning processes create environments where students can practice building leadership skills and it increases leadership skills of female students. In colleges where students commute to school and do not remain on campus to participate in campus life activities, Collaborative Learning creates a community environment within the classroom.

Achievement in Chemistry and their Learning Habits teams are said to attain higher level thinking and preserve information for longer times than students working individually. Effective collaborative learning involves establishment of group goals, as well as individual accountability. This keeps the group on task and establishes an unambiguous purpose. Before beginning an assignment, it is best to define goals and objectives to save time. Achievement in Chemistry and their Learning Habits establishes an atmosphere of cooperation and helping school wide and in this type of learning the students develops responsibility for each other. It builds more positive heterogeneous relationships and it encourages alternate student assessment techniques. It fosters and develops interpersonal relationships and the development of modelling problem solving techniques by students' peers.

When two necessary key elements (group goals and individual accountability) are used together, the effects of Achievement in Chemistry and their Learning Habits on achievement are consistently positive. It also benefits students through improved relations among different ethnic groups and students with learning disabilities. Other benefits include: Development of higher level thinking skills; it creates an environment of active, involved, exploratory learning; the students explore alternate problem solutions in a safe environment; it addresses learning style differences among students and the classroom resembles real life social and employment situations. In future, such a type of approached are need for the development of student's attainment of elaborate knowledge. From this point of views, learning of chemistry concepts by XI Students through Achievement in Chemistry and their Learning Habits approach was effective.

References :-

1. Akani, O. (2017). Identification of the Areas of Students Difficulties in Chemistry Curriculum at the Secondary School Level. International Journal of Emerging Trends In Science And Technology, 04(04), 5071-5077. https://doi.org/10.18535/ijetst/v4i4.04
2. Akhani, P., Rathi, N., & Jasore, M. (1999). Academic Achievement, Study Habits and Loneliness of Children of Employed and Unemployed Mothers. *Journal of Psychometry and Education*, 30 (1), 65-57.
3. Azikiwe, U. (1998). Study approaches of university students, WCCI Region II Forum, vol. 2, Lagos, 106-114.
4. Balfakih, N. (2011). The Effectiveness of Analogy on 10th Grade Students' Chemistry Achievement in the United Arab Emirates. The International Journal Of Learning: Annual Review, 17(10), 383-396. https://doi.org/10.18848/1447-9494/cgp/v17i10/58814
5. Bliss, L.B., & Mueller, R.J(1987). Assessing study behaviors of college students: Findings from a new instrument. *Journal of Developmental Education,* 11(2),14-18.

6. Booth, L. (2000). Working mothers at risk from too much guilt. Vellage limited Ch.Abid.H. (2006) Effect of Guidance Services on Study Attitudes, Study Habits and Academic Achievement of Secondary School Students. Bulletin of Education & Research, 28(1), 35-45.
7. Chandana Aditya and Radha Ghosh (2014). Study habits of Secondary School Students of Working and Non-working Mothers. IOSR Journal of Humanities and Social Science, 19 (10), 12-15. https://doi.org/10.9790/0837-191011215
8. Conant J.B. (1951). Science and Common Sense. New Haven: Yale University Press., XII, 371. https://doi.org/10.2307/2021002
9. Crede, M., & Nathan R Kuncel (2008). Study habit, skills and attitudes: the third pillar supporting collegiate academic performance. Perspectives on Psychological Science, 3(3), 425-453. https://doi.org/10.1111/j.1745-6924.2008.00089.x
10. Duvarci, D. (2010). Activity-based chemistry teaching: A case of "elements and compounds". Procedia - Social and Behavioral Sciences. 2. ISBN: 2506-2509. https://doi.org/10.1016/j.sbspro.2010.03.362.
11. Fitzpatrick, F.C. (1960). Policies for Science Education, New York: Bureau of Publications.
12. Johnstone, A. H. (2006). Chemical Education Research in Glasgow in Perspective. Chemistry Education Research and Practice. 7(2), 49-63. https://doi.org/10.1039/B5RP90021B
13. Khirwadkar, A. (2007). Teaching of chemistry. New Delhi: Sarup and sons.
14. Lederman, S. J. (1983). Tactual roughness perception: Spatial and temporal determinants. *Canadian Journal of Psychology / Revue canadienne de psychologie, 37*(4), 498–511. https://doi.org/10.1037/h0080750
15. Mani, R. S. (2015). Objectives of Teaching Chemistry in Modern Schools. International Journal of scientific research, 5(1), 406- 409. Retrieved from https://www.worldwidejournals.com/international-journal-of-scientific-research-(IJSR)/fileview.php?val=January_2016_1451656499__121.pdf
16. Michael Gagan. (2010). Innovative Methods of Teaching and Learning Chemistry in Higher Education, Royal Society of Chemistry
17. NCF (2005). National curriculum Framework, National Council for Educational Research and Training, New Delhi: NCERT.
18. Oliver, J. & Paul, M. (2018). What has chemistry ever done for you? Australian academy of science. Retrieved on November 15, 2019 from https://www.science.org.au/curious/chemistry
19. Ramdas, B. (2020). A Study on the Learning Difficulties in Physical Science at Secondary School Level. SSRN Electronic Journal. https:// doi.org/10.2139/ssrn.3668371.
20. Rona F. Flippo & David C. Caverly, (2000). *Handbook of college reading and study strategy research*. Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum Association Publishers, 123 – 126. https://doi.org/10.1080/10790195.2000.10850109
21. Russell, J. B. (1980). General Chemistry, McGraw-Hill International Book Company.
22. Sirhan, G. (2007). Learning difficulties in chemistry: An overview. Journal of Turkish Science Education, 4(2), 2-20.
23. Wilson, E.O (1999), The natural Sciences, Consilience: The Unity of Knowledge (Reprinted). New York, New York: Vintage, 49-71. **ISBN 978-0-679-76867-8**

♣★♣

सृजनश्री - न्यास

एवं

सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी

- 'सृजनश्री न्यास, बिन्दकी-फतेहपुर उ. प्र.' एवं 'सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी-गुजरात' के संयुक्त तत्वावधान में शोधार्थियों के लिए ''भारतीय-ज्ञान-पद्धति'' विषय पर केन्द्रित ऑनलाइन अंतरविषयक कार्यशाला का आयोजन दिनांक 20/05/2024 से 13/06/2024 (22 दिवस 105 घण्टे) तक किया गया, जिसमें चयनित 20 शोधार्थियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।
- इस कार्यक्रम में शोधार्थियों को शोध-पद्धति की प्रक्रिया से परिचित कराते हुए, उन्हें भारतीय ज्ञान-संपदा से अवगत कराने की पूरी कोशिश हुई है।
- इस कार्यक्रम में देश के चुने हुए 42 विद्वानों को ऑनलाइन व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया गया।
- इस कार्यक्रम की उपलब्धि यह रही कि इसमें पहले एवं दूसरे सत्र में जिस 'विषय एवं शीर्षक' पर विद्वानों के व्याख्यान आयोजित हुए, तीसरे सत्र में उसी पर शोधार्थियों द्वारा चर्चा एवं परि-चर्चा की गई और अंत में अध्यक्षीय वक्तव्य के माध्यम से उन्हें एक सुचिंतित वैचारिक प्रक्रिया से अवगत कराया गया।
- इस कार्यक्रम के माध्यम से शोधार्थियों को भारतीय ज्ञान परंपरा एवं पद्धति को समझने में मदद मिली होगी- ऐसा हमारा विश्वास है।
- इस कार्यक्रम के संरक्षक के रूप में डॉ. अल्पेश जोशी, समन्वयक के रूप में डॉ.सुनील कुमार मानस एवं संचालक के रूप में डॉ.योगेशभाई के. चाडसणिया- ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com